मानस-प्रसङ्ग

[तृतीय भाग]

लेखक
"मानस-राजहंस" पंडित विजयानन्द त्रिपाठी

श्रीमान् नरेन्द्र महाराज महेन्द्रसिंह जू देव, नागौद नरेश के शुभ दान से प्रकाशित

प्रकाशक
मंत्री—मानससंघ
पो० रामबन, वाया सतना

प्रथम संस्करण] [मूल्य ॥-)

श्री महेन्द्र पुस्तकमाला

श्रीरामचरितमानस तथा गोस्वामीजीके अन्य ग्रंथोंके आधार पर विविध विषयोंकी उपयोगी पुस्तकोंका प्रकाशन 'श्रीमहेन्द्र पुस्तकमाला' द्वारा करनेकी अनुमति मानससंघको प्रदान करनेकी कृपा श्रीमान् नरमेन्द्र महाराज महेन्द्रसिंह जू देव नागौद नरेशने की है। संघ, इसके लिये आपका विशेष आभारी है।

हर्ष है कि मालाको यथेष्ट उन्नति हो रही है। यह पाचवाँ पुष्प "मानस प्रसङ्ग" पांच भागों में पूर्ण होगा। अन्य पुस्तकें भी तैयार हो रही हैं।

शारदा प्रसाद
मन्त्री—मानससङ्घ
पो० रामवन, वाया सतना।

मानस-सङ्घ

श्रीरामचरितमानस के प्रचार द्वारा जगतका परम कल्याण हमारा उद्देश है।

केवल एक बार ॥) शुल्क देकर जीवन भरके लिये आप सङ्घ के सदस्य बन सकते हैं।

प्रत्येक सदस्यको वर्ष में श्रीरामचारितमानसके दो पारायण करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। दो नये सदस्य बनाने चाहिये।

देश में मानस सङ्घ के सहस्त्रों सदस्य हैं और सैकड़ों शाखायें हैं। एक स्थान पर ९ सदस्य होने पर शाखा हो जाती है।

सङ्घ मानस पारायणका प्रचार करता है। इस कार्य के लिये 'मानसमणि' मासिक पत्र निकालता है और पुस्तकें प्रकाशित करता है।

सङ्घ के इस समय चार ग्रन्थ माला निकल रही हैं। १—श्री मानस रत्नावली ग्रन्थ माला २—श्री महेन्द्र पुस्तकमाला ३—श्री कौशलेन्द कथा माला ४ —श्री रामदास भक्तमाला।

आप सदस्य बनें, दूसरों को बनावें, पत्र मंगावें और पुस्तकोंका अध्ययन करें। सदस्य फार्म यहाँ लिखने से भेज दिये जावेंगे।

निवेदक - मन्त्री, मानस संघ।

मानस-प्रसङ्ग

[तृतीय भाग]

लेखक

'मानस-राजहंस' पंडित विजयानंदजी त्रिपाठी

प्रकाशक
मन्त्री—मानससंघ
पो० रामवन,
वाया सतना ।

मुद्रक
माधो प्रिंटिंग वर्क्स,
इलाहाबाद ।

मानस-प्रसङ्ग

तृतीय भाग

सुकृत पुंज मंजुल अलिमाला।
ज्ञान बिराग बिचार मराला॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती।
मीन मनोहर ते बहु भाँती॥ ४॥

अर्थ—पुण्य का समूह सुन्दर भौंरे का झुण्ड है, ज्ञान विराग और विचार हंस हैं, ध्वनि काव्य, अवरेव काव्य, काव्य के गुण और जाति ही अनेक प्रकार की सुन्दर मछलियाँ हैं।

सुकृत पुंज—इस संसार में कर्म प्रधान है। वस्तुतः अखिल विश्व कर्म की मूर्ति है। प्राणियों के भोग मोक्ष के लिये ही विश्व की रचना है। जो जैसा कर्म करता है, वह वैसा फल पाता है, यथा—

करम प्रधान बिश्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फल चाखा॥

जो सुकृत (सुकर्म) करता है, वह उत्तम फल (सुख) पाता है, और जो दुष्कृत (पाप) करता है, सो निकृष्ट फल (दुख) पाता है। ईश्वर कर्म सापेक्ष ही फल देता है, यथा—

कालरूप तिन कहँ मै ताता।
सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता॥
सुभ अरु असुभ कर्म अनुहारी।
ईसु देइ फलु हृदय बिचारी।

अतः सब कल्याणों का मूल सुकृत ही है। सुकृत से ही इस लोक में सुख मिलता हैं, सुकृत से ही स्वर्ग होता है, सुकृत से ही चित्त की शुद्धि पूर्वक ज्ञान होता है, और ज्ञान से मोक्ष होता है, यथा—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग॥

धर्म तें बिरति जोग तें ज्ञाना।
ज्ञान मोच्छ प्रद वेद बखाना॥

वेदानुकूल साधन को ही सुकृत कहते हैं, यथा—

जप तप व्रत जम नियम अपारा।
जे श्रुति कह सुभ धरम अचारा॥

यथा—

जोग जप दान तप नाना व्रत मष नेम।

ऐसे ही पुण्य के समूह को सुकृत पुंज कहते हैं।

मंजुल अलिमाला—

अर्थात् सुन्दर भौंरों के झुण्ड सुकृत पुंज हैं। कमल के गन्ध से आकृष्ट होकर, झुण्ड के झुण्ड भौंरे मकरंद के लिये कमल के वन में पहुँचते हैं, और कमल के पुष्पों में प्रवेश करके मकरंद पान करते हैं।

इसी भाँति सुकृत पुंज उस कविता बन में भावों को ग्रहण करते हैं। ये भाव ही सुकृत पुंज के जीवन हैं, सुकृत पुंज इसी से पुष्ट होते हैं। पराग तक तो सब की गति है, अर्थ सभी लगा लेते हैं, पर भाव मकरंद की प्राप्ति सब किसी के भाग्य में नहीं है।

काव्य में अलौलिक आनन्द होता है, अतः पुण्य रूपी भौंरे ही उसके रस के अधिकारी हैं, जहाँ सुकृत नहीं वहाँ भावों की गुण ग्राहकता कौन करे।

ज्ञान विराग विचार—

यहाँ ज्ञान से परोक्ष ज्ञान, और वैराग्य से वशीकार संज्ञा वैराग्य अभि-प्रेत हैं। ज्ञान की परिभाषा देते हुए स्वयम् प्रभु ने कहा है, कि—

'ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं।
देख ब्रह्म समान सब माहीं॥

विद्या विनय सम्पन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता तथा चाण्डाल में भी ब्रह्म को समान देखना ही ज्ञान है। भावार्थ यह कि सम दृष्टि रखना ज्ञान है, और विषम दृष्टि रखना अज्ञान है।

विषयों के वश न होना, और उन्हें अपने वश में रखना वैराग्य है, यथा—

अवध राज सुर राज सिहाहीं।
दसरथ धन सुनि धनद लजाहीं॥
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा।
चंचरीक जिमि जंपक बागा॥

सत् असत् के विवेचना को ही संक्षेपतः विचार कहते हैं। मानव जाति का विचार ही सर्वस्व है,

यथा—

भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू।
नगरु बाजि गज भवन भँडारू।
संपति सब रघुपति कै आही।
जौं बिनु जतनु चलौं तजि ताही॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई।
पाप सिरोमनि साइ दोहाई॥
करइ स्वामि हित सेवक सोई।
दूखन कोटि देइ किन कोई॥
अस बिचारि सुचि सेवक बोले।
जे सपनेहु निज धरमु न डोले॥

मराला—

ज्ञान विराग और बिचार को हँस कहा। तीन प्रकार के हंस का उल्लेख मानस में पाया जाता है, राज हंस, कल हंस और हंस! राजहंस की गति की भी प्रशंसा है, यथा—

सखी सङ्ग लै कुंआर तब चलि जनु राज मराल।

इसी भाँति कल हंस की बोलो की प्रशंसा है, यथा—

बोलत जल कुक्कुट कल हंसा !

और हंस के केवल क्षीर नीर विवरण की प्रशंसा है, यथा—

खीर नीर विवरन गति हंसी।

सो यहाँ ज्ञान राजहंस है, क्योंकि ज्ञान की ही उत्कृष्टा गति है, उसी से मोक्ष होता है, वैराग्य कल हंस है, क्योंकि विरागयुक्त बाणी की ही शोभा है, यथा—

सुनि विराग संजुत कपि बानी।
बोलें बिहँसि राम धनु पानी॥

और विचार को हँस कहा, क्योंकि यह क्षीर नीर को भांति गुण दोष का विभाग करता है, यथा—

भरत हंस रवि बंस तड़ागा।
जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥

रामचरित मानस में जहाँ-जहाँ ज्ञान विराग विचार का उल्लेख मिले, वहाँ-वहाँ राजहंस, कलहंस, और हंस का विहार समझ लेना चाहिए। ये सातों काण्डों में विचरते हैं।

राजहंस —

(१) बिषय करन सुरजीव समेता।
सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई।
राम अनादि अवध पति सोई॥ (बाल)

(२) सुनहुँ तात तुम्ह कहँ मुनि कहहीं।
राम चराचर नायक अहहीं॥
सुभ अरु असुभ करम अनुहारी।
ईसु देइ फलु हृदय बिचारी॥ (अयोध्या)

(३) त्वमेकमद्भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं॥
जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं॥ (अरण्य)

(४) तात राम कहुँ नर जनि मानहु ।
निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ॥ (किष्किन्धा)

(५) तात राम नहिं नर भूपाला ।
भुवनेश्वर कालहु कर काला ॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता ।
व्यापक अजित अनादि अनंता ॥ (सुन्दर)

(६) बिश्वरूप रघुवंस मनि, करहु बचन बिस्वासु ।
लोक कल्पना वेद कर, अंग अंग प्रतिजासु ॥ (लंका)

(७) जय सगुन निर्गुन रूप ।
रूप अनूप भूप सिरोमने (उत्तर)

कलहंस—

(१) बरबस राज सुतहिं तब दीन्हा ।
नारि समेत गवन बन कीन्हा ॥ (बाल)

(२) तेहि पुर बसत भरत बिनुरागा ।
चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥ (अयोध्या)

(३) सो मम लोचन गोचर आगे ।
राखौं देह नाथ केहि खांगे ॥ (आरण्य)

(४) अब प्रभु कृपा करहु एहि भांती ।
सब तजि भजन करौं दिन राती ॥ (किष्किन्धा)

(५) चाहिअ करन सो सब करि बीते ।
तुम्ह सुर असुर चराचर जीते ॥
संत कहहिं असि नीति दसानन ।
चौथेपन जाइहि नृप कानन ॥ (लंका)

(६) भए कालबस जब पितु माता ।
मइ बन गएउ भजन जन त्राता ॥ (उत्तर)

इस—

(१) गाधि तनय मन चिंता व्यापी।
हरि बिनु मरिहि न निसिचर पापी॥
तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा।
प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा॥ (बाल)

(२) करि बिचारु मत दीन्ही टीका।
राम रजायस आपन नीका॥ (अयोध्या)

(३) उतरु देत मोहि बधब अभागे।
कस न मरौं रघुपति सर लागे॥ (आरण्य)

(४) इहाँ पवन सुत हृदय बिचारा।
राम काज सुग्रीव बिसारा॥ (किष्किन्धा)

(५) कपि करि हृदय बिचार।
दीन्ह मुद्रिका डारि तब॥ (सुन्दर)

(६) करि बिचार तिन्ह मन्त्र दृढावा।
चारि अनी कपि कटकु बनावा॥ (लङ्का)

(७) मन महं करइ बिचार बिधाता।
माया बस कवि कोविद ज्ञाता॥ (उत्तर)

धुनि कवित—

वाच्य अर्थ ते व्यंग्य में चमत्कार अधिकार।
ध्वनि ताही को कहत सो उत्तम काव्य विचार॥
ध्वनि को भेद विभाति को भनै भारती धाम।
अविवक्षितो विवक्षितो वाच्य दुहुन को नाम॥

ध्वनि के दो भेद होते हैं (१) लक्षणा मूलक ध्वनि और (२) अभिधामूलक ध्वनि। इनमें से पहिले को अविवक्षित वाच्य और दूसरे को विवक्षितान्यपर वाच्य कहते हैं। अविवक्षित वाच्य ध्वनि भी दो प्रकार की है, पहिला वाच्य के अर्थान्तर में संक्रमित होने पर 'अर्थान्तर संक्रमित वाच्य' और दूसरा वाच्य के अत्यन्त तिरस्कृत होने पर 'अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य' कहलाता है।

अर्थान्तर संक्रमित यथा—

हंस बंस दशरथु जनक राम लखन से भाइ।
जननी तू जननी भई विधि सन कछु न बसाइ॥

यहाँ द्वितीय जननी शब्द से कैकेयी जी की कठोरता व्यंग्य है।

अत्यन्त तिरस्कृत, यथा—

कुंदकली दाड़िम दामिनी।
कमल सरद ससि अहि भामिनी॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा।
गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥
श्री फल कनक कदलि हरषाहीं।
नेकु न संक सकुच मन माहीं॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू।
हरषे सकल पाइ जनु राजू॥

यहाँ कुन्द कली आदिकों का हर्षित होना असम्भव है, तब वाचक ने अपना अर्थ छोड़ा, और साध्यवसाना से दशनादि का ग्रहण हुआ। अब उपमेय से उपमान का अनादर पाना गूढ़ व्यंग्य हुआ और 'तुम्हारे बैरियों का हर्ष मुझ से नहीं सहा जाता' यह ध्वनि है।

अविवक्षितान्य-पर-वाच्य-ध्वनि भी प्रथम दो प्रकार की होती है—(१) असंलक्ष्य-क्रम व्यंग्य और (२) संलक्ष्य-क्रम व्यंग्य, यथा—

अर्थ व्यंग के काम को जहँ सो ध्वनि द्वै भांति।
प्रथमहि क्रम नहिं जानिये, दूजो है क्रम कांति॥

इन में से पहिले असंलक्ष्य क्रम के उदाहरण रस भावादि हैं।

संलक्ष्य क्रम ध्वनि के तीन भेद होते हैं—(१) शब्द शक्ति (२) अर्थ शक्ति (३) उभय शक्ति। शब्द शक्ति, यथा—

पूछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची।
भरत भुआल होहिं यह साँची॥

यहाँ गुनियोंके रेखा खींचने की सिद्धि 'भुआल' शब्द से होती है। यहाँ पहले इसी अर्थ की प्रतीति होती है, कि भरत राजा होंगे, पर ऐसा

अर्थ करने से गुणी झूठे पड़ेंगे अतः 'भुआल' शब्द की शक्ति से यह अर्थ निकला कि भरत पृथ्वी में रहेंगे, यथा—

महि खनि कुस साँथरी सँवारी।

अर्थ शक्ति के दो भेद होते हैं—(१) स्वतः सम्भवी वस्तु और (२) कवि प्रौढ़ोक्ति। जगत् प्रसिद्ध अर्थ को स्वतः सम्भवी वस्तु कहते हैं, और कवियों की प्रौढि को प्रौढोक्ति कहते हैं, जैसे—कवि लोग यश को श्वेत और कलङ्क का रंग श्याम मानते हैं, यथा—

जस धवलिहहुँ भुवन दसचारी।

(यश श्वेत)

रिषि पुलस्ति जस बिमल मयंका ॥
तेहि ससि महुँ जनि होहु कलङ्का। कलंक श्याम,

कवि प्रौढोक्ति, यथा—

हमहिं देखि मृग निकर पराहीं।
मृगी कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं ॥
तुम्ह आनन्द करहु मृग जाए।
कंचन मृग खोजन ए आए ॥

कहँ कहावैं जड़न सो बातैं विविध प्रकार।
उपमा में उपमेय को देहिं सकल अधिकार ॥

वस्तु लक्षण—

जहँ विशेष गन वाक्य को अर्थ चमत्कृत होय।
अलंकार ते भिन्न जो वस्तु कहावै सोय ॥

१—स्वतः सम्भवी वस्तु से वस्तु, यथा—

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा।
सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा ॥

यहाँ जानकी की सुकुमारता वस्तु से 'बन साथ मत ले जाओ' यह दूसरी वस्तु है।

स्वतः सम्भवी वस्तु से अलङ्कार, यथा—

पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ।
तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ॥

यहाँ जानकी की सुकुमारता वस्तु से उपमालङ्कार हुआ।

स्वतः सम्भवी अलङ्कार, यथा—

कलप वेलि जिमि बहु बिधि लाली।
सींचि सनेह सलिल प्रति पाली॥

यहाँ उपमालङ्कार से रूपकालङ्कार।

स्वः सम्भवी अलङ्कार से वस्तु, यथा—

२—प्रौढोक्ति वस्तु से वस्तु, यथा—

तव रिपु नारि रुदन जलधारा।
भरेउ बहोरि भएउ तेहि खारा।

यहाँ राम प्रताप वस्तु से शत्रुओं का त्रास दूसरी वस्तु है।

कवि प्रौढोक्ति वस्तु से अलङ्कार, यथा—

दंड जतिन्ह कर भेद जहं नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिय अस रामचन्द्र के राज॥

यहाँ रामराज वस्तु से परिसंख्यालङ्कार।

कवि प्रौढोक्ति अलङ्कार, यथा—

आश्रम सागर सांत रस पूरन पावन पाथु।
सेन मनहु करुना सरित लिएँ जाहिं रघुनाथ॥

यहाँ रूपक से उत्प्रेक्षालङ्कार।

कवि प्रोढोक्ति अलङ्कार से वस्तु, यथा—

नाम पाहरू रात दिनु ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहि बाट॥

यहाँ रूपकालङ्कार से जानकी विरहवस्तु।

उभय शक्ति, यथा—

लखनु लखेउ प्रभु हृदय खभारू।

यहाँ लखन के स्थान पर सौमित्र कहने से काम नहीं चलता, लखन ने मन की बात लख ली, इसीलिये शब्द शक्ति हुई, और रामजी को समय धर्म में जानकर भाई भी शत्रु हुआ, इसलिये अपनी सेवकाई प्रकट करने के लिये अवसरानुकूल कहते हैं। यह अर्थ शक्ति हुई।

यहाँ प्रादेश मात्र दिखलाया गया, नहीं तो ध्वनि के १०४०५५ भेद हैं।

अवरेव कबित—

जहाँ व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से उत्तम न हो अर्थात् समान या न्यून हो, उसे गुणी भूत व्यंग्य कहते हैं यहाँ अवरेव शब्द इसी के लिये आया है। टेढ़ी काट को अवरेव कहते हैं। अथवा अवरइव अवरेव हुआ। व्यंग्य सहित बोलने वाले को कहा भी जाता है, कि 'अवरेव' के साथ बात करते हैं। इस ग्रन्थ में भी अवरेव शब्द टेढ़ी चाल के अर्थ में आया भी है!

राम कृपा अवरेव सुधारी।
मिटिहि अनट अवरेव।

सो ये सीधी बात को तो व्यंग्य कहते ही नहीं, टेढ़ी बात में ही व्यंग्य होता है। यहाँ 'धुनि अवरेव कवित' कहा है, सो काव्य के दो ही भेद हैं—(१) ध्वनि और (२) गुणीभूत व्यंग्य, अतः अवरेव से गुणीभूत व्यंग ही यहाँ अभिप्रेत है।

इसके आठ भेद हैं—(१) अपराङ्ग (२) असुन्दर (३) सन्दिग्ध (४) तुल्य प्रधान (५) वाच्य सिद्धाङ्ग (६) अस्फुट (७) काकुक्षिप्त (८) अगूढ़।

अपराङ्ग के चार भेद हैं—(क) रसवत् (ख) प्रेयस् (ग) ऊर्जस् (घ) समाहित।

१—(क) रसवत्—

जहाँ रसअङ्ग हों, और मुख्य रस भावादि हो वहाँ रसवत् अलङ्कार होता है, यथा—

अति सुकुमार जुगुल मेरे वारे।
निसिचर सुभट महाबल भारे॥

यहाँ वात्सल्य का अङ्ग भयानक है।

(ख) प्रेयस्

जहाँ भाव अङ्ग हो, मुख्य कोई और हो वहाँ प्रेयस अलङ्कार होता है, यथा—

सोह नवल तनु सुंदर सारी।
जगत् जननि अतुलित छवि भारी॥

यहाँ शृङ्गार का अङ्ग देवरति है।

(ग) ऊर्जस् —

जहाँ आभास अङ्ग हो, मुख्य कोई और हो, तहाँ ऊर्जस् अलङ्कार होता है, यथा—

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी।
थकित भई रजनीचर धारी॥

यहाँ बीर का अङ्गभावाभास है।

(घ) समाहित —

जहाँ भाव शान्तादिक अङ्ग हो, वहाँ समाहित अलङ्कार होता है, यथा—

पुनि सम्भारि उठी सो लंका।
जोरि पानि कर विनय ससंका॥

यहाँ बीर का अङ्ग क्रोध शान्ति है।

२—असुन्दर, यथा —
नाथ उमा मम प्रान सम गृह किंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब है प्रसन्न बर देहु॥

यहाँ सती का अपराध क्षमा न करना व्यंग्य है, सो वाच्यार्थ से सुन्दर नहीं है।

३—संदिग्ध, यथा—

मरम बचन जब सीता बोला।
हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥

मर्म बचन बहुत से हो सकते हैं, यहाँ क्या कहा इस बात का निश्चय नहीं है।

४—तुल्य प्रधान यथा—

एक कहहिं कहहिं करहिं अपर,
एक करहिं कहत न बागहीं।

व्यंग्य यह है, कि मैं कहता नहीं कर दिखाऊँगा। यहाँ व्यंग्य और वाच्यार्थ की बराबरी है।

५—वाच्यसिद्धाङ्ग—

बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिय सबुइ समाजु।
सुदिनु सुमंगलु तबहिं जब राम होहिं जुवराजु॥

यहाँ जब राम जी युवराज होंगे तब सुदिन समझना, इस समय राम बन जावेंगे।

६—अस्फुट, यथा—

गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहँसे रघुवंस मनि प्रीति अलौकिक जानि॥

यहाँ प्रीति अलौकिक कह कर कवि ने प्रीति का बड़ा पोषण किया, फिर भी चरण स्पर्श से पर पत्नी स्मरण की व्यञ्जना बड़ी कठिनता से आई।

२—काकु, यथा—

हैं दससीस मनुज रघुनायक।
जाके हनूमान से पायक॥

व्यंग्य यह कि ईश्वर हैं।

८—अगूढ़, यथा—

जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं।
पद रज सिर सिसु धरत गोंसाईं।

व्यंग्य यह है कि आप तो वीर क्षत्रिय की भांति आये।

गुण—जिस भांति शौर्य्यादि गुण शरीरी के उत्कर्ष के कारण है, उसी भांति गुण रस के भी उपकारक हैं गुण तीन हैं—(१) माधुर्य्य (२) ओज और (३) प्रसाद।

(१) माधुर्य्य—जिसके सुनने से चित्त द्रवीभूत हो उसे माधुर्य्य कहते हैं। श्रृङ्गार करुणा और शान्त रस में यह गुण उपयुक्त होता है। अपने वर्ग के अन्तिम अक्षर से संयुक्त, कवर्ग, चवर्ग, तवर्ग और पवर्ग के अक्षर, ह्रस्व वर्ण, मध्यवर्ती र औ ण, समासाभाव या छोटे समास इसके उपयोगी हैं, यथा—

कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि।

(२) ओज—यह बीर, वीभत्स, रौद्रमें उपयुक्त होता है। र, ट, ठ, ड, ढ, श और ष, बड़े २ समास, और विकट रचना इसके उपयोगी होते हैं, यथा—

कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जटजूट बाँधत सोह क्यों

(३) प्रसाद—अर्थ की सरलता ही इसकी विशेषता है, यथा—

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी।
संभ्रम चलि आईं सब रानी॥

कवित्त जाति—जाति चार प्रकार की होती है—(१) कौशिकी (२) भारती (३) आरभटी और (४) सात्तिकी।

(१) कहिये केसोदास जहँ करुना हाँस सिंगार।
सरस बरन सुभभाव जहँ सौ कौशिकी विचार॥ यथा—

भए विलोचन चारु अचंचल।
मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल॥

(२) बरनिय जामह वीररस भय अरु अद्भुत हास।
कह केशव शुभ अर्थ जहँ सो भारती प्रकास॥ यथा—

कोदण्ड धुनि अति चण्ड सुनि।
मनुजाद भय मारुत ग्रसे॥

(३) केसव जाकह रौद्ररस अरु वीभत्सक जान।
आरभटी प्रारंभ यह पद पद जमक बखान॥ यथा—

भए क्रुध जुद्ध विरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।

(४) अद्भुत रुद्र सुवीर रस समरस करत समान।

सुनतहि समुझत भाव मन सो सात्तिकी बखान।। यथा—

देखरावा मातहि निज अद्भुतरूप अखंड।

रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मण्ड।।

मीन मनोहरते—अर्थात् ध्वनि, अवरेब, गुण और जाति ये इस रामचरितमानस की मछलियाँ है। मानस का जल इतना स्वच्छ है, कि उसके भीतर सञ्चरण करनेवाली मछलियाँ बराबर दिखलाई पड़ती हैं, इसलिये मनोहर कहा। यद्यपि जल जन्तु अनेक हैं, पर जल से सच्चा प्रेम मछलियों का ही है, यथा—

मकर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह।

तुलसी केवल मीन को हैं सांचिलो सनेह।।

ये जल से बाहर रह नहीं सकतीं, अगाध जल में ही सुखी रहती है, यथा—

सुखी मीन सब एक रस अति अगाध जल मांहि।

मछलियों को जल में ऊपर नीचे सञ्चरण करने में बड़ी शोभा होती है, यथा—

पुनि पुनि रामहि चितव सिय सकुचति मनु सकुचैन।

हरत मनोहर मीन छवि प्रेम पिया से नैन।।

बहुभांति—यहाँ चारि भांति को ही बहु भाँति कहा है, क्योंकि ध्वनि, अवरेब गुण और जाति मिलकर संख्या में चारही होती हैं, अन्य स्थान में भी इसी भाँति चारही गिनाया है, यथा—

बुधि बल सील सत्य सब मीना।

श्रीमानस के आचार्य्यों ने ध्वनि आदि के गुणों पर दृष्टि रखते हुए, इन मछलियों का नाम भी बतलाया है। ध्वनि पहिना (पाठीन) मछली है। पहिना बड़ी होतो है, जल के भीतर रहती है, ठीक येही व्यवस्था ध्वनि की है, यह वाच्यार्थ से अधिक होतो है, इसकी गति तलस्पर्शी है, मार्मिक लोग ही इसे जान सकते हैं।

अवरेव वामी मछली है। कभी मुख और पूछ मिलाकर चलती है, इसी भाँति अवरेव काव्य में मुख्यार्थ और व्यंग्य मिलकर ही काम करते हैं, इसमें व्यंग्यार्थ मुख्यार्थ से अधिक न होने से मेल खा जाता है।

गुन सिघरी मछली है। सिधरी छोटी होती है, और गोल बाँध कर चलती है। इसी भाँति गुण में विशेष विशेष अक्षर के समूहों से काम लिया जाता है।

जाति चेल्हवा मछली है। चेल्हवा पृथक रहती है और चमकती है, इस भाँति जाति में रसों की चमक है, और धर्म विशेष के भिन्न रहने से ही जातिसंज्ञा है।

ये ध्वनि अवरेव, गुण जाति सम्पूर्ण मानस में सञ्चरण करती हैं। भगवद्यश के अगाध होने से इनके सञ्चरण में कोई बाधा नहीं है। मानस के ध्वनि आदि का राम यश ही जीवन है।

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना।
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना॥

प्राकृत जन का गुण गान काव्य नहीं है कविता सरस्वती का पछिताना है।

अरथ धरम कामादिक चारी।
कहब ज्ञान विज्ञान बिचारी॥
नवरस जप तप जोग बिरागा।
ते सब जलचर चारु तड़ागा॥ ५॥

अर्थ धर्म, काम और मोक्ष इन चारों को तथा ज्ञान विज्ञान को विचार कर कहूँगा। नवरस जप तप योग और विराग, ये सब इस सुन्दर सर के जलचर हैं।

अर्थ—अर्थ धन को कहते हैं। धन सब का प्रार्थनीय है। निर्धन होने से बढ़कर दुःख जगत् में कोई नहीं है, यथा—

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं॥
जल संकोच बिकल भइ मीना।
अबुध कुटुम्बी जिमि धन हीना॥

मा० तृ० २

अतः अर्थ के लिये लोग कौनसा अनर्थ नहीं करते। अर्थ के लिये ही कैकेही ने श्रीरामचन्द्र को वनवास दिया। अर्थ के लिये ही कपट मुनि ने राजा भानुप्रताप का सर्वनाश किया, अर्थ के लिये ही बालि ने सुग्रीव का सर्वस्वापहरण किया, आज भी अर्थ के लिये क्या नहीं हो रहा है।

शास्त्रकारों ने अर्थ शुद्धि को ही शुद्धि माना है। उस अर्थ के लिये अर्थशास्त्रविहित छ उपाय हैं। (१) भिक्षा (२) सेवा (३) कृषि (४) विद्या (५) कुसीद (६) और वाणिज्य। सभी का उल्लेख रामचरितमानस में है।

१—भिक्षा, यथा—

अब सुख सोवत सोचु नहिं, भीख मांगि भव खांहि

२—सेवा, यथा—

सेवक सो जो करै सेवकाई।
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी।
आजु दीन्हि बिधि बनि भलि भूरी॥

३—कृषि, यथा—

कृषी निरावहिं चतुर किसाना।

४—विद्या—

विद्यानिधि कहुँ विद्या दीन्हाँ।
पठये बोलि गुनी तिन्ह नाना।
जे बितान बिधि कुशल सुजाना॥
विधिहिं बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा।
बिरचे कनक कदलि के खंभा॥

५—कुसीद (सूद), यथा—

दिन चलि गये ब्याज बहु बाढ़ा।

६—वाणिज्य, यथा—

फिरेउ बनिक जिमि मूर गँवाई।
(संभु चाप) बड़ बोहित पाई।

चढ़े जाइ सब संग बनाई ॥
चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि ।
धनिक बनिक वर धनद समाना ।
बैठे सकल वस्तु लै नाना ॥

जिस भांति धनागम का उपाय आवश्यक है, उसी भाँति उनकी रक्षा भी शास्त्र सम्मत है, यथा--

संपति सब रघुपति कै आही । जौं विनु जतनु चलौं तजि ताही ॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई । पाप सिरोमनि सांइ दोहाई ॥

धन की तीन गति सुनी गई है—दान, भोग, और नाश । अतः धन प्राप्त होने पर उसमें से दान होना चाहिये । क्योंकि दान से ही धन धन्य होता है, यथा—

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी

मनुष्य निःसुख न रहे, अतः आवश्यक भोग में भी धन का व्यय होना चाहिये । जो धन दान या भोग में व्यय नहीं होता, उसका नाश होता है । मनुष्य को व्यसनी न होना चाहिये, व्यसनी के पास धन नहीं टिकता, यथा—

व्यसनी धन सुभगति व्यभिचारी ।

इसप्रकार जहाँ तहाँ अर्थ शास्त्र के अनेक उपदेश ग्रन्थमें पाये जाते हैं ।

यद्यपि अर्थ की गिनती पुरुषार्थों में है, परन्तु वस्तुतः अर्थ साधन है, अर्थ के होने से धर्म भी होता है, और काम (सुख) की भी सिद्धि होती है, पर किसी हालत में धर्म विरोधी अर्थ का उपार्जन और संग्रह न करे, यथा—

राजु नीति बिनु धन बिनु धर्मा । हरिहि समर्पे बिनु सत कर्मा ॥
विद्या बिनु बिबेक उपजाएँ । श्रमफल पढ़े किये अरु पाएं ॥

धर्म—वेदविहित कर्म ही धर्म है, यथा—

जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा ।

धर्म ही सब कुछ है, धर्म से ही अर्थ होता है, धर्म से ही सुख होता है, यथा—

जिमि सुख संपति बिनहिं बोलाये। धरम सील पहिजाहिं सुभाये॥
जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥

वेद परमेश्वर की वाणी है, अतः धर्माचरण परमेश्वर की आज्ञा है। धर्म के लिये संकट सहना, धर्म के लिये प्राण तक देना मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है, यथा—

सिवि दधीचि हरिचन्द नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि संकट नाना॥

उस धर्म का मूल सत्य है, बिना सत्य के किये हुए सब धर्म निर्मूल होकर नष्ट हो जाते हैं। इस काल में भी धर्म बहुत कुछ होता रहता है, पर उसमें फल नहीं लगने पाता, सत्य के न पालन करने से सब निर्मूल हो जाते हैं, यथा —

सत्य मूल सब सुकृत सोहाये। वेद पुरान बिदित मनु गाये॥
सुकृत जाइ जौं प्रन परिहरऊँ। कुंवरि कुआरि रहउ का करऊं॥

अहिंसा परम धर्म है, यह अन्य धर्मों से बड़ा है, यथा—

परम धरम श्रुति बिदित अहिंसा। पर निन्दा सम अघ न गिरीसा!

यह सत्य और अहिंसा सार्ववर्णिक धर्म है, इनके अतिरिक्त ऐसे विशेष धर्म हैं, जिनके न पालन करने से मनुष्य शोचनीय हो जाता है, यथा -

सोचिअ बिप्र जो वेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥
सोचिअ बयसु कृपिन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगत सुजानू॥
सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानी। मुखरु मान प्रिय ज्ञान गुमानी॥
सोचिअ पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलह प्रिय इच्छाचारी॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई॥

दोहा—

सोचिअ गृही जो मोह बस, करइ करम पथ त्याग ।
सोचिअ जती प्रपंचरत बिगत बिबेक बिराग ॥

बैखानस सोइ सोचइ जोगू । तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू ॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी । जननि जनक गुर बंधु बिरोधी ॥
सब बिधि सोचिअ पर अपकारी । निज तनु पोषक निरदय भारी ॥
सोचनीय सबही बिधि सोई । जो न छाड़ि छलु हरिजन होई ॥

जिस भाँति विहित का अनुष्ठान धर्म है उसी भाँति निषेध का वर्जन भी धर्म है । विहित का अनुष्ठान ऊपर कहा, अब निषेध का परिवर्जन कहते हैं ।

यथा—

जे अघ मातु-पिता सुत मारे । गाइ गोठ महि सुरपुर जारे ॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें । मीत महीपति माहुर दीन्हे ॥
जे पातक उपपातक अहहीं । करम बचन मनभव कवि कहहीं ॥

जे. परिहरि हरिहर चरन भजहिं भूतगन घोर ।
तिन्हकइ गति मोहि देहु बिधि जौं जननी मत मोर ॥

बेचहिं वेदु धरमु दुहि लेहीं । पिसुन पराय पाप कहि देहीं ॥
कपटी कुटिल कहल प्रिय क्रोधी । वेद विदूषक बिश्व बिरोधी ॥
लोभी लंपट लोलुप चारा । जे ताकहिं परधनु पर दारा ॥
जे नहिं साधु सङ्ग अनुरागे । परमारथ पंथ बिमुख अभागे ॥
जे न भजहिं हरि नर तनु पाई । जिन्हहिं न हरिहर सुजस सोहाई ॥
तजि श्रुति पंथ बाम पथ चलहीं । बंचक बिरचि वेष जग छलहीं ॥
तिन्ह कइ गति मोहिं सङ्कर देऊ । जौं जननी यह जानउँ भेऊ ॥

अब साधन धर्म कहते हैं—

तीर्थाटन साधन समुदाई । जोग बिराग ज्ञान निपुनाई ॥
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना । सञ्जम दम जप तप मख नाना ॥
भूत दया द्विज गुरु सेवकाई । बिद्या बिनय बिवेक बड़ाई ॥
जहँ लगि साधन वेद बखानी । सब कर फल हरि भगति भवानी ॥

मित्र धर्म, यथा—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरिसम रज करि जाना। मित्र क दुख रज मेरु समाना॥
जिन्ह के असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रकटइ अवगुनन्हि दुरावा॥
बिपतिकाल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥
आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहि भलाई॥

स्त्री धर्म—

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरजु धर्म्म मित्र अरु नारी। आपतकाल परखिअहि चारी॥
बृद्ध रोग बस जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किये अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकै धर्म्म एकु ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा॥
जग पतिब्रता चार बिधि अहहीं। वेद पुरान सन्त सब कहहीं॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम परपति देखैं कैसे। भ्राता।पिता पुत्र निज जैसे॥
धर्म्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई॥
बिनु अवसर भय ते रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥
पति बंचक पर पति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥
छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि समको खोटी॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पति ब्रत धर्म्म छाड़ि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

दो०—

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभगति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥

राज धर्म, यथा—

मुखिया मुखु सो चाहिए खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित बिवेक॥

राज धरम सरबस इतनोई। जिमि मन माह मनोरथ गोई॥

जगत् विजयी धर्म—

सुनहु सखा कह कृपा निधाना।
जेहि जय होइ सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्यसील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिवेक दम परहित घोरे।
छमा कृपा समतारजु जोरे॥
ईस भजन सारथी सुजाना।
बिरति चर्म सन्तोषु कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा।
बर बिज्ञान कठिन को दंडा॥
अमल अचलमन त्रोन समाना।
समजम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा।
एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्म मय अस रथ जाकें।
जीतन कहुँ न कतहुँ रिपु ताकें॥

महा अजय संसार रिपु जीति सकै सो बीर।
जाके असरथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मति धीर॥

प्रधान रूपेण धर्म का वर्णन दिखलाया गया, नहीं तो धर्मोपदेश से ही ग्रन्थ भरा पड़ा है। किस अवसर पर कौन धर्म बर्तना चाहिये, दो धर्मों के विरोध आ पड़ने पर क्या करना चाहिये इत्यादि धर्म के गूढ़ रहस्यों से राम कथा ही भरी पड़ी है।

काम—सामान्यतः वैषयिक सुख को, और विशेषतः स्त्री सुख को काम कहते हैं। यदि सुस्वरगान होता हो, तो श्रवणेन्द्रिय तर्पण से बड़ा सुख होता है, और यदि गाने वाला सुन्दर भी हो, तो साथ ही साथ चक्षुरिन्द्रिय तर्पण होने से, सुख अधिक बढ़ जाता है। यदि उस समय गुलगुला बिछावन बिछा हो, तो स्पर्शेन्द्रिय के तर्पण से और भी सुख मिले। ऐसे समय में यदि पान इलायची का भी बन्दोबस्त हो, तो कहना ही क्या है, रसनेंद्रिय के तर्पण से सुख की मात्रा में और भी उत्कर्ष बढ़ जाय। अब यदि इत्र गुलाब जल आदि भी सुलभ हो जाय, तो घ्राणेन्द्रिय के भी तर्पण से सर्व ज्ञानेंद्रिय तर्पण होने लगे! इस भाँति साधन सामग्री के तारतम्य से काम सुख की मात्रा में भी तारतम्य होता है।

यह सब होते हुये भी काम, धर्म और अर्थ का विरोधी न हो। धर्म और अर्थ का विरोधी काम आत्मनाश का कारण होता है, उससे लोक परलोक सभी का नाश होता है, ऐसे ही काम के लिये कहा गया है कि—

काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ।

वस्तुतः धर्मात्मा इंद्रिय जयी पुरुष ही वैषयिक सुख भोग करने में भी समर्थ हो जाता है, प्रभूतधन और धर्म होने से ही काम सुख लिया जा सकता है, यथा—

श्रुति पथ पालक धरम धुरंधर।
गुनातीत अरु भोग पुरंदर॥ यथा—

भूपति भवनु सुभायँ सुहावा।
सुरपति सदनु न पटतर पावा॥
मनिमय रचित चारु चौबारे।
जनु रति पति निज हाथ सँवारे॥

सुचि सुबिचित्र सुभोग मय सुमन सुगंध सुबास।
पलंग मंजु मनि दीप जहँ सब विधि सकल सुपास॥

विविध बसन उपधान तुराईं।
छीर फेन मृदु बिसद सुहाईं॥
तहँ सिय रामु सयन निसि करहीं।
निज छबि रति मनोज मदु हरहीं॥ तथा—

असकहि रचे रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहि बिमाना॥
भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहि अमर अभिलाखे॥

दासी दास साजु सब लीन्हे।
जोगवत रहहिं मनहि मन दीन्हे॥

आसन सयन सुबसन बिताना। बन बाटिका बिहँग मृग नाना।
सुरभि फूल फल अमिय समाना। बिमल जलासय बिबिध बिधाना॥
असन पान सुचि अमी अमी से। देखि लोग सकुचात जमी से॥

रितु बसंत बह त्रिविध बयारी।
स्रक चंदन बनितादिक भोगा।
देखि हरष बिस्मय बस लोगा॥

कामादिक चारी—

कामादिक चारी कह कर मोक्ष का भी ग्रहण किया। यहाँ काम के साथ मोक्ष कहने का यह तात्पर्य्य है, कि काम और मोक्ष साध्य हैं, और धर्म तथा अर्थ साधन हैं। काम के विषय में ऊपर कह आये हैं, अब मोक्ष के विषय में कुछ कहना है।

मोक्ष—मोक्ष का अर्थ है, छुटकारा। जीव कर्म बन्धन से जकड़ा हुआ है, यथा—

तैं निज कर्म डोरि दृढ़ कीन्ही। अपने करनि गाँठि कसि दीन्ही॥

उस कर्म बंधन से छूटना ही मोक्ष है, यथा—

देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी॥
देखा जीव नचावै जाही। देखी भगति जो छोरै ताही।

मोक्ष के चार भेद हैं—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य—

इनमें से प्रथम तीन से तो क्रम मुक्ति होती है, परंतु साक्षात् मुक्ति को सायुज्य कहते हैं।

सालोक्य—यथा—
अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी । मम धामदा पुरी सुखरासी ॥
सामीप्य, यथा—
जा मज्जन ते बिनहि प्रयासा । मम समीप नर पावहिं बासा ॥
सारूप्य, यथा—
गीध देह तजि धरि हरि रूपा । भूषन बहु पटपीत अनूपा ॥
स्यामगात बिसाल भुज चारी । अस्तुति करत नयन भरि बारी ॥
सायुज्य, यथा—
तजि जोग पावक देह हरिपद लीन भइ जहँ नहि फिरे ।

निष्काम धर्म के सेवन से अंतःकरण की शुद्धि होती है, अर्थात् मल का नाश होता है, उपासना से विक्षेप का नाश होता है, और ज्ञान से आवरण का नाश होता है, इस प्रकार माया की तीनों शक्तियों के नाश होने से सहज स्वरूप का प्रकाश होता है, और यही सायुज्य मुक्ति है, यथा—

धर्म तें विरति जोग ते ज्ञाना ।
ज्ञान मोच्छ प्रद वेद बखाना ॥

जिनकी उपासना तीव्र है, और आत्मसाक्षात्कार नहीं हुआ, उन्हें क्रम मुक्ति होती है ।

अर्थ धर्म और काम त्रिवर्ग कहलाता है, इसकी सङ्गिनी स्त्री है, केवल मोक्ष में स्त्री का उपयोग नहीं है, वल्कि उसमें स्त्री बाधक है, यथा—
तजि माया सेइय परलोका । मिटहि सकल भव संभव सोका ॥
सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता ।
मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता ॥ इत्यादि

ज्ञान—यहाँ ज्ञान से अपरोक्ष ज्ञान अभिप्रेत है, यथा—
सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा । दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा ॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा । तब भवमूल भेद भ्रमनासा ॥
प्रबल अविद्या कर परिवारा । मोह आदितम मिटै अपारा ॥

इस ज्ञान का साधन दीपक के रूपक में ग्रन्थकार ने कहा है, जिसकी व्याख्या मैंने 'सतपंच चौपाई' ग्रन्थ में की है।

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई।
जो हरि कृपा हृदय बस आई॥
जप तप व्रत जम नियम अपारा।
जे श्रुति कह सुभ धरम अचारा॥
तेइ तृन हरित चरै जब गाई।
भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई॥
नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा।
निर्मल मन अहीर निज दासा॥
परम धरम्म मय पयदुहि भाई।
अवटै अनल अकाम बनाई॥
तोष मरुत तब छमा जुड़ावै।
धृति सम जावन देइ जमावै॥
मुदिता मथै बिचार मथानी।
दम अधार रजु सत्य सुबानी॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता।
बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥

दो०—

जोग अगिनि करि प्रकट तब करम सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ज्ञान घृत ममता मल जरि जाइ॥
तब बिज्ञान रूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़ समता दिअट बनाइ॥
तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास ते काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि।

सोरठा—

एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिज्ञान मय।
जातहि जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥

विज्ञान—जड़ चेतन की जो ग्रन्थि हृदय में पड़ी हुई है, उसका छूटना विज्ञान है, यथा—

तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा।
उर गृह बैठि ग्रन्थि निरुआरा ॥
छोरन ग्रन्थि पाव जौ सोई।
तौ यह जीव कृतारथ होई ॥
जौं निर्विघ्न पंथ निरबहई।
सो कैवल्य परम पद लहई ॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद।
संत पुरान निगम आगमवद ॥

तथा—

दुर्लभ ब्रह्मलीन विज्ञानी

कहब विचारी—

यद्यपि ज्ञान, विज्ञान का विचार ग्रन्थ में अनेक स्थलों में किया है, परन्तु जैसा स्पष्ट निरूपण इनका ज्ञान दीपक प्रसङ्ग में है, वैसा अन्य स्थानों में नहीं है। सचमुच ऐसा विचार कर, दीपक का रूपक ग्रन्थ-कार ने बाँधा है, कि थोड़े में ही ऐसा विशद वर्णन हो गया, कि एक ग्रन्थ लिखने पर भी वैसा वर्णन कठिन था।

नौ रस—

जैसे सुख है ब्रह्म को मिले जगत सुधि जात।
सोई गत रस में मगन भये सुरस नौ भाँत ॥
मिलि विभाव अनुभाव अरु संचारी जे आन।
उपजावत रस रुचिर यौं ज्यौं निज अंगन पान ॥

पूर्वोक्त रीति से विभाव अनुभाव और सञ्चारी भाव से पुष्ट होकर स्थायी भाव (रति, हास्य, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा आश्चर्य और शान्ति) से ही नवों रसों की अभिव्यक्ति होती है। 'शृङ्गार हास्य करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स अद्भुत और शान्त ये ही नव रस हैं।

१ शृङ्गार—

रम्य देश अरु चातुरी समय आदि दै वेष ।
इतने तिय पिय चितरञ्जन मधुरारति सुचि शेष ॥
ललित अङ्ग सञ्चरण ते सो रतिपाय प्रकर्ष ।
उपजत रस शृङ्गार सो कविजन कहत सहर्ष ॥
द्वै प्रकार शृङ्गार रस कहि संयोग वियोग ।
मिलिवो अनमिल आदि दै वरनत पंडित लोग ॥

संयोग, यथा—

एक बार चुनि कुसुम सुहाए ।
निज कर भूषन राम बनाए ॥
सीतहिं पहिराए प्रभु सादर ।
बैठे फटिक सिला पर सुन्दर ॥

यहाँ राम जी के लिये सीताजी आलम्बन हैं, और सीता जी के लिये रामजी आलम्बन हैं,

'चुनि कुसुम सुहाये' से

उद्दीपन भी कहा, इसलिये विभाव हुआ, कटाक्षादि अनुभाव, तथा हर्ष सञ्चारीभाव से पुष्ट होकर स्थायी भाव रति से शृङ्गार रस हुआ। इसके देवता विष्णु और रङ्ग श्याम है ।

वियोग—

अब वियोग कहि पाँच विधि जहँ पूरब अनुराग ।
विरह ईर्षा श्राप पुनि गमन विदेश विभाग ॥

मिलन से प्रथम प्रीति को पूर्वानुराग कहते हैं, यथा—

(क) लोचन मग रामहि उर आनी ।
दीन्हें पलक कपाट सयानी ॥
धरि बड़ि धीर राम उर आने ।
फिर आपनपौ पितु बस जाने ॥

(ख) विरह—

निसिहि ससिहि निंदति बहुभाँती ।
जुग सम भई सिराति न राती ॥

(ग) ईर्षा—

गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसत पद पानि ।

(घ) शाप—

मोर श्राप करि अङ्गीकारा ।
सहत राम नाना दुख भारा ॥

(ङ) विदेश गमन यथा—

चलनु चहत बन जीवन नाथू ।
केहि सुकृती सन होइहि साथू ॥

वियोग की दशा दशाएँ कही गईं हैं—(१) अभिलाष (२) चिन्ता (३) संकल्प (४) गुण कथन (५) उद्वेग (६) प्रलाप (७) उन्माद (८) व्याधि (९) जड़ता (१०) मरण ।

१—अभिलाष, यथा—

देखि रूप लोचन ललचाने ।

२—चिन्ता, यथा—

सुमिर पितापन मन अति छोभा ।

३—संकल्प, यथा—

प्रभु तन चितै प्रेम पन ठाना ।

स्मरण, यथा—

जेहि विधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम ।
सो छवि सीता राखि उर रटति रहति हरि नाम ॥

४—गुण कथन, यथा—

सिय मुख छवि विधु व्याज बखानी ।
गुरु पहिं चले निसा बड़ि जानी ॥

५—उद्वेग, यथा—

देखिअत प्रगट गगन अंगारा।
अवनि न आवत एकौ तारा॥
पावक मय ससि स्रवत न आगी।
मानहुँ मोहि जानि हत भागी।
सुनहि बिनय मम बिटप असोका॥ इत्यादि

६—प्रलाप, यथा—

अहह नाथ हौं निपट बिसारी।

७—उन्माद, यथा—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी।
तुम देखी सीता मृग नैनी॥

८—व्याधि, यथा—

कृस तनु सीस जटा एक बेनी।

९—जड़ता, यथा—

जाइ समीप राम छबि देखी।
रहि जनु कुँवरि चित्र अवरेखी॥

१०—मरण, यथा—

विरह अगिन तन तूल समीरा।
स्वास जरै छन माह सरीरा।

२—हास्य—

जह अजोग को जोग पुनि उलटो लखिये काज।
बुरो रूप चितवन चलन हास विवरन विभाव॥
मंद मध्य अरु उच्च स्वर हंसिवो है अनुभाव।
हर्ष उद्वेगरू चपलता ते सञ्चारी भाव॥
इनते नृत्य कवित्त में, हास्य व्यंग जहँ होय।
कवि सुहृदै। सब रसन में, हास्यरस्य है सोय॥

यथा—

नभ पर जाइ विभीषन तबही।
बरखि दिए मनि अंबर सबहीं॥
जोइ जोइ मन भावै सोइ लेहीं।
मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं॥

यहाँ बानर विभाव, हसना अनुभाव, हर्ष सञ्चारी भाव है। हास्य रस के देवता प्रमथ और रङ्ग श्वेत है।

३—करुणा—

दुखी देखिये मित्र को, मृतक आपयुत बन्धु।
उनते उपजत शोक लखि, दारिद युत अति अन्धु॥
रुदन कम्प अरु रोम तन, ए अनुभाव बखान।
मोह मूर्छा दीनता, ते सञ्चारी जान॥
इनते नृत्य कवित्त में, शोक व्यंग जब होय।
कवि सुहृदय सब रसन में, करुना रस तहँ जोय॥

यथा—

अवगाहि सोच समुद्र सोचहिं नारि नर व्याकुल महा।

यहाँ दशरथमरण विभाव है, सम्बन्धियों का मिलन और रुदन अनुभाव है, मोह दीनता सञ्चारी भाव है, शोक स्थायी भाव है, इससे करुणा रस हुआ। इसके देवता वरुण और रङ्ग कपोत चित्रित है।

४—रौद्र—

गर्व वचन रिपुरन लखत, और कढ़े हथियार।
इनते उपजत क्रोध है, ए विभाव सरदार॥
भृकुटि कुटिल अरु अरून दृग, अधर फरक अनुभाव।
गर्व विकलता चपलता, ते सञ्चारी भाव॥
इनते नृत्य कवित्त में, क्रोध व्यंग जब होय।
कवि सहृदय सब कहत हैं, रौद्ररस्य है सोय॥

यथा—

जौं सत संकर करहिं सहाई।
तदपि हतौं रघुबीर दुहाई॥

यहाँ इंद्रजीत विभाव, भुजा का फड़कना अनुभाव, गर्व सञ्चारी भाव, और क्रोध स्थायी भाव है, इसलिये रौद्र रस हुआ। इसके देवता रुद्र, रंग लाल।

५—वीर—

युद्धौ दान दया बहुरि, धर्म सुचार प्रभाव।
उग्रजीव जेते जहाँ, ते कहिये अनुभाव॥
वचन अरुनता वदन की, अरु फूलै सब अंग।
एं अनुभाव बखानिये, सब वीरन के संग॥

इसके देवता इंद्र हैं वर्ण गौर है।

(१) युद्ध वीर का आलम्बन शत्रु का ऐश्वर्य्य, उद्दीपन सेना कोलाहलादि, तथा अनुभाव अङ्ग स्फुरणादि है, यथा—

सुनि सेवक दुख दीन दयाला।
फरकि उठीं द्वौ भुजा बिसाला॥

(२) दयावीर का आलम्बन दीन, उद्दीपन दुःख वर्णादि, तथा अनुभाव दुःख दूरी करण, और मृदु भाषणादिक है, यथा—

निसिचर निकर सकल मुनि खाए।
सुनि रघुबीर नयन जल छाए॥
निसिचर हीन करौं महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

(३) दानवीर का आलम्बन याचक, उद्दीपन दान, समय, ज्ञान, तीर्थ गमनादि तथा अनुभाव सर्वस्व त्यागादि है, यथा—

नगर कुवेर को सुमेरु को बराबरी,
विरंचि बुद्धि को विलास लङ्क निरमान भो।
ईसहि चढ़ाइ सीस बीसबाहु वीर तहाँ,
रावन सो राजा रजतेज को निधान भो॥

तुलसी तिलोक की समृद्धि सौंज सम्पदा,
सकेलि चाकिराखी रासि जाँगर जहान भो।
तीसरे उपास बनवास सिन्धु पास,
सो समाज महाराज जू को एक दिन दान भो॥

(४) धर्म वीर का आलम्बन शास्त्र, उद्दीपन पर्वयोग तीर्थादि, अनुभाव वचन, बदन की अरुणता आदि, सञ्चारी अनुराग हर्ष, यथा—

जहँ लगि कहे पुरान श्रुति, एक एक सत्र याग।
बार सहस्र सहस्र नृप, किए सहित अनुराग॥
कोटिन बाजि मेघ प्रभु कीन्हें।

६—भयानक—

बाघ व्याल विकराल रन सूनो, वन गृह देखि।
जोरावर अपराधयुत, भाव भयानक लेखि॥
कंप रोम प्रस्वेद तन, ये अनुभाव बखान।
मोह मूर्छा दीनता, ते सञ्चारी जान॥
इनते नृत्य कवित्त में, अति भय परगट होय।
कवि सुहृदय को मगन मन, कहत भयानक सोय॥ यथा—
हाहाकार करत सुर भागे।

यहाँ रावण बलवान् विभाव, कम्प अनुभाव, दीनता सञ्चारी भाव, भयस्थायी भाव है। देवता यम और रङ्ग नील है।

७—वीभत्स—

अनुभावन को देखिवो, सुनिवो सुमिरन जान।
और निषिद्ध कदर्ज ये, म्लान विभाव बखान॥
निन्दा करिवो कम्पतन, रोम सुहै अनुभाव।
दुःख असूया जानिये, है सञ्चारी भाव॥
कवित नृत्य में म्लान जहँ इनते परगट होय।
नवरस मे वीभत्स रस, ताहि कहत कवि सोय॥

अवहिं सैल जनु निर्भर भारी। सोनितसरि कादर भयकारी॥

छन्द—

कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी।
दोउकूल दल रथरेत चक्र अवर्त बहति भयावनी॥
जल जंतु गज पदचर तुरग खरविविध बाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने॥
वीर परहिं जनु तीर तरु, मज्जा बहु बह फेन।
कादर देखि डरहिं तहँ, सुभटन के मन चेन॥

मज्जहिं भूत पिसाच बेताला।
प्रमथ महा झोटिंग कराला॥
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं।
एकते छीनि एक लै खाहीं॥
एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई।
सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई॥

कहरत भट घायल तट गिरे।
जहँ तहँ मनहु अर्धजल परे॥
खैचहिं गीध आंत तट भएँ।
जनु बंसी खेलत चित दएँ॥
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं।
जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं॥

जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं।
भूत पिसाच बधू नभ नंचहिं॥
भट कपाल करताल बजावहिं।
चामुण्डा नाना बिधि गावहिं॥
जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं।
खांहि हुहाहिं अघाहिं दपट्टहिं॥

यहाँ मज्जादिक विभाव, देखने वाले का रोमांच अनुभाव, असूया सञ्चारी भाव, ग्लान स्थायी भाव है। देवता काल, रंग नील।

८—अद्भुत—

जहँ अनहोनी देखिये, बचन रचन अनुरूप ।
अद्भुत रस के जानिये, ये विभाव सारूप ।।
बचन कम्प अरु रोम तन, ये कहिये अनुभाव ।
हरख शंक चित मोहयुत, ते संचारी भाव ।।
इनते नृत्य कवित्त में, व्यंग आचरज होय ।
नौऊ रस में जानिये, अद्भुत रस है सोय ।।

यथा—

सती दीख कौतुक मगजाता ।
आगे राम सहित श्री भ्राता ।।
फिर चितवा पाछे प्रभु देखा ।
सहित बन्धु सिय सुन्दर वेखा ।।
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना ।
सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना ।।
देखे सिव बिधि बिस्नु अनेका ।
अमित प्रभाव एक तें एका ।।
बंदत चरन करत प्रभु सेवा ।
बिबिध वेष देखे सब देवा ।।

दोहा—

सती बिधात्री इन्दिरा, देखीं अमित अनूप ।
जेहि-जेहि वेष अजादि सुर, तेहि २ तनु अनुरूप ।।
हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं ।
नयन मूंदि बैठीं मग माहीं ।।

यहाँ रामजी विभाव, कम्प अनुभाव, शंका मोह सञ्चारी भाव, आचरज व्यंग, ब्रह्मा देव, और रंगपीत है, इसलिये अद्भुत रस हुआ ।

९—शान्तरस

तत्वज्ञान ते कवित में जब उपजत निर्वेद ।
कहत शान्तरस तासु को, सोहै नवमो भेद ।।

विभाव--

सिद्ध मण्डली तपोवन कथा जगत समसान ।
ये विभाव अनुभाव पुनि, सब में समता ज्ञान ।।

धैर्य और हर्ष सञ्चारी है, इसके देवता नारायण और रंग शुक्ल हैं ।

दीप सिखा समजुवति तन, मन जनि होसि पतंग ।
भजहिं राम तजि कामु, मदु करहि सदा सतसंग ।।

जप--

मन्त्र के बार-बार उच्चारण को जप कहते हैं । इसका साधारण नियम यह है, कि जप में जिह्वा और ओष्ठ तो हिले, पर मन देवता में लगा रहै, और इतने धीरे से उच्चारण करे, कि आपही सुन सके । इसे उपांशु जप कहते हैं, मानसिक जप में जिह्वा और ओष्ठ भी नहीं हिलते, यथा---

जपौं मन्त्र सिव मंदिर जाई ।

सब प्रकार के यज्ञों में जप यज्ञ श्रेष्ठ है, यथा--

यज्ञानां जप यज्ञोस्मि ।

यज्ञों में जप यज्ञ स्वयं मैं हूँ, सिद्ध-मन्त्र गुरु से विधान पूर्वक मन्त्र ग्रहण किया जाता है, और उसके जपने का भी विधान और नियम है, ये सब बातें गुरु से जानने योग्य हैं, यथा—

संभु मंत्र मोहि द्विज वर दीन्हा ।
सुभ उपदेश विविध विधि कीन्हा ।।

परन्तु ऐसे मन्त्र भी हैं, जिसके जप में किसी विशेष विधान की आवश्यकता नहीं पड़ती, उस मणि मन्त्र कहते हैं, यथा—

भाय कुभाय अनख आलसहूँ ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ।।
बेगि विलंब न कीजिये, लीजिय उपदेस ।
महामंत्र सोइ जपिये जेहि जपत महेस ।।

तथा—

तुम पुनि राम राम दिन राती।
सादर जपहु अनंग अराती॥

जप का महा महात्म्य है, इसका वर्णन बालकाण्ड के दोहा १८ से लेकर दोहा २७ तक नव दोहों में किया गया है। यह प्रकरण विशेष मनोयोग से द्रष्टव्य है।

मंत्र परम लघु जासु बस, बिधि हरिहर सुर सर्व।
महामत्त गजराज कहुँ, बस कर अंकुस खर्व॥

परन्तु शास्त्रोदित फल उसी को सम्यक् रूप से होता है, जो सानुराग जप करता है, यथा—

राम राम सब कोउ कहै, ठग ठाकुर औ चोर।
बिना प्रेम रीझै नहीं, तुलसी नन्द किशोर॥

तप—

मन में रजो गुण और तमोगुण का समुद्रेक ही अशुद्धि है। यह अशुद्धि अनादि कर्म क्लेश वासना से भरी हुई है, इसके कारण यह विषय जाल जीव को घेरे है। इस अशुद्धि का नाश बिना तप के अन्य उपाय से हो नहीं सकता।

बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा।
जल बिनु रस कि होइ संसारा॥

स्वधर्मानुष्ठान, प्राणायाम, कृच्छ्चान्द्रायण, सान्तपनादि व्रत को तप कहते हैं, यथा—

पुनि हरि हेतु करन तप लागे।
बारि अधार मूल फल त्यागे॥
उर अभिलाष निरंतर होई।
देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥

दोहा—

एहि बिधि बीते बरष षट सहस बारि आहार।
सम्बत सप्त सहस्र पुनि रहे समीर अधार॥

बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ ।
ठाढ़े रहे एक पग दोऊ ॥
अस्थि मात्र होइ रहे सरीरा ।
तदपि मनाग मंनहिं नहिं पीरा ॥

तथा—

उर धरि उमा प्रान पति चरना ।
जाइ बिपिन लागीं तपु करना ॥
अति सुकुमारि न तनु तप जोगू ।
पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू ॥

नित नव चरन उपज अनुरागा ।
बिसरी देह तपहिं मनु लागा ॥
सम्बत सहस मूल फल खाए ।
सागु खाइ सत बरष गँवाए ॥

कछु दिन भोजनु बारि बतासा ।
किए कठिन कछु दिन उपवासा ॥
बेलवाती महि परै सुखाई ।
तीन सहस सम्बत सोइ खाई ॥

पुनि परिहरे सुखानेउ परना ।
उमहि नाम तब भयउ अपरना ॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा ।
ब्रह्म गिरा भै गगन गँभीरा ॥

ब्राह्मणों में तपका ही बल था, इस समय तपोहीन होने से ही ब्राह्मण जाति निर्वीर्य्य हो गई है, तपोबल से ही जगत् की उत्पत्ति, पालन, धारणादि क्रिया होती है, यथा—

तप बल विप्र सदा बरिआरा ।
तप बल रचैं प्रपंचु बिधाता ।
तप बल विष्णु सकल जग त्राता ॥

तप बल सम्भु करहिं संघारा।
तप बल सेषु धरै महि भारा॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी।

परन्तु विचार कर देखिये तो, इस तपको भी सफल बनाने वाली भक्ति है, यथा—

नाम राम को अंक है सब साधन है सून।
अंक बिना कछु हाथ नहिं, अंक रहे दस गून॥

जोग—समाधि को योग कहते हैं। चित्त की विकृतावस्था जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति है, और स्वस्थावस्था समाधि है, यथा—

मानस रोग कछुक मैं गाए।
हहिं सब के लखि बिरलेन्ह पाए॥
जाने तें छीजहिं कछु पापी।
नास न पावहिं जन परितापी॥
एक व्याधि बस नर मरहिं, ए असाधि बहु व्याधि।
पीडहिं संतत् जीव कहुँ, सो किमि लहै समाधि॥

चित्त की वृत्ति दिन रात इधर-उधर दौड़ा करती है, उन्हें रोकना अर्थात् मनको थिर करना समाधि है, यथा—

मनु थिरु करि सब संभु सुजाना।
लगे करन रघुनायक ध्याना॥

ध्यान की घनीभूतावस्था ही समाधि है, ऐसे समाधि को सवितर्क समाधि कहते हैं।

चित्त के स्थिर करने से वह स्वरूपावस्था को प्राप्त होता है, यथा—

संकर सहज सरूपु संभारा।
लागि समाधि अखंड अपारा॥

चित्त का स्थिर करना ही परम पुरुषार्थ है, इसी से कैवल्य मुक्ति होती है। और—

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद।
संत पुरान निगम आगम बद॥

उस चित्त की स्थिरता के लिये योग शास्त्र में अनेक उपाय कहे गये हैं।

(१) अभ्यास और वैराग्य से उसका निरोध होता है, यथा—

जन्मजन्म मुनि जतनु कराहीं।

यहाँ "मुनि" कहने से "वैराग्य" कहा, और "जतन कराहीं" कह कर अभ्यास कहा।

(२) ईश्वर से प्रेम करने से भी मन का निरोध होता है, यथा—

सब कै ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहिं बांध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं।
हरष सोकभयं नहिं मनमाहीं॥

इसका उपाय यह है, कि उनके नाम का जप करे, और उसके अर्थ की भावना करे, यथा—

नाम निरूपन नाम जतन ते,
सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन ते।

यहाँ 'नाम निरुपण' से अर्थ की भावना कहा, और "नाम जतन" से नाम का जप कहा।

ऐसा करने से मन में परमात्मा का प्रकाश होता है, यथा—

जोगिन्ह परम तत्त्व मय भासा।
सान्त शुद्ध रस परम प्रकासा॥

और परमात्मा के प्रकाश से जीव को सहज स्वरूप का साक्षात्कार होता है, यथा—

मम दरसन फल परम अनूपा।
जीव पाव निज सहज सरूपा॥

सहज स्वरूप की प्राप्ति ही मुक्ति है। ईश्वर के चरणों में प्रेम करने से ही अन्तरायों का नाश होता है, यथा—

सुमिरत हरिहिं श्रापगति बाधी।
सहज बिमल मन लागि समाधी॥

(३) सुखी के प्रति मैत्री, दुःखी के प्रति करुणा, पुण्यात्मा के प्रति मुदिता और पापात्मा के प्रति उपेक्षा की भावना करने से मन की स्थिति होती है, यथा—

श्रद्धा क्षमा मैयत्री दाया।
मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥

(४) प्राण के जय से मन का जय होता है, और मन के जय से प्राण का जय होता है। अतः दोनों प्रकार के योगी होते हैं। जो मन के जय से प्राण का जय करते हैं वे राज योगी कहलाते हैं, यथा—

जीतहु मनहिं सुनिय अस, रामचन्द्र के राज।

और प्राण का जय करके मन का जय चाहने वाले हठ योगी कहलाते हैं, प्राणायाम से प्राण जय होता है, यथा—

जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं

(५) अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश, ये पाँच क्लेश हैं। अगिले चारों अस्मिता आदि की जन्म भूमि अविद्या है, इसीलिये अविद्या पञ्चपर्वा कही गई है, यथा—

दारुन अविद्या पञ्च जनित विकार श्रीरघुबर हरैं।

सो क्लेशों के नाश और समाधि भावना के लिये क्रिया योग का विधान है, तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान को क्रिया योग कहते हैं। तप का वर्णन पहिले कर आये हैं। भगवन्नाम के जप, तथा मोक्ष शास्त्र के अध्ययन को स्वाध्याय कहते हैं, सब कर्मों को भगवत् चरणों में अर्पण, अथवा सर्व कर्म फल त्याग को ईश्वर प्रणिधान कहते हैं, यथा—

हृदय न कछु फल अनुसंधाना।
भूप बिबेकी परम सुजाना ॥
करै जे धरम करम मन बानी।
बासुदेव अर्पित नृप ज्ञानी ॥ इत्यादि

अब योग के आठों अङ्गों का वर्णन किया जाता है। (१) यम (२) नियम (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) धारणा (७) ध्यान और (८) समाधि।

१—यम—

(क) अहिंसा (ख) सत्य (ग) अस्तेय (घ) ब्रह्मचर्य और (ङ) अपरिग्रह, ये पाँच यम हैं।

क—अहिंसा परम धर्म है, इसमें प्रतिष्ठित होने से उसके सन्निकट सब प्राणी बैर छोड़ देते हैं, यथा—

सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा !
गिरिपर सकल करहि अनुरागा ।।

ख—सत्य सब धर्मों का मूल है, इसमें प्रतिष्ठित होने से क्रियाओं के फल को आश्रय मिलता है, नहीं तो क्रियाओं के सब फल ही नष्ट हो जाते हैं, यथा—

सत्य मूल सब सुकृत सुहाये।

ग—अस्तेय--दूसरे का द्रव्य अशास्त्र पूर्वक न ग्रहण करने को अस्तेय कहते हैं। इसमें प्रतिष्ठित होने से सब ओर से रत्न उसके पास आकर उपस्थित होते हैं, यथा—

तिमि सुख संपति बिनहिं बुलाये।
धरम सील पहि जाहिं सुभाये ।।
जिमि सरिता सागर महुं जाहीं।
जद्यपि ताहि कामना नाहीं ।।

घ—ब्रह्मचर्य्य-इससे वीर्य्य (समर्थ्य) की प्राप्ति होती है, यथा—

ब्रह्म चरज ब्रत रत मति धीरा।
तुम्हहिं कि करै मनो भव पीरा ।।

ङ—अपरिग्रह-विषयों के अर्जन, रक्षण, और क्षय में संग तथा हिंसा रूप दोषों को देखकर, उसे स्वीकार न करने को अपरिग्रह कहते हैं, यथा—

हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं।

अपरिग्रह में प्रतिष्ठित होने से जन्म कथन्ता का ज्ञान होता है, यथा--

सुधि मोहि नाथ जनम बहु केरी।
सिव प्रसाद मति मोह न घेरी॥

२—नियम—

(क) शौच (ख) सन्तोष (ग) तप (घ) स्वाध्याय (ङ) ईश्वर प्रणिधान, ये पाँच नियम हैं।

क—शौच आभ्यन्तर और वाह्य भेद से दो प्रकार का होता है। मिट्टी जलादि से बाहरी अशुद्धि को दूर करने को वाह्य, और चित्त की अशुद्धि के दूर करने को आभ्यन्तर कहते हैं, यथा—

सकल सौच कर जाइ नहाए।

इसमें अपने ही शरीर से घृणा हो जाती है, दूसरे का सन्सर्ग वह क्यों करने लगा, यथा—

पंच रचित यह अधम सरीरा।

ख—सन्तोष—

सन्निहित साधन से अधिक की इच्छा न रखने को सन्तोष कहते हैं, यथा—

जिमि लोभहिं सोखइ सन्तोषा।

इससे अनुत्तम सुख का लाभ है, यथा—

जौ निज मन सन्तोष है, इन्द्र वापुरो कौन।

तप—

द्वन्द्व सहिष्णुता को तप कहते हैं। भूख, प्यास, शीत उष्ण, काष्ठ मौन, आकार मौन, कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत को तप कहते हैं। इससे अशुद्धि आवरण दूर होता है, अणिमादि सिद्धि की प्राप्ति होती है, दूर से देख सुन सकता है, यथा—

मसक समान रूप कपि धरी।

स्वाध्याय—

मोक्ष-शास्त्र का अध्ययन तथा प्रणव के जप को स्वाध्याय कहते हैं। स्वाध्याय शील को देवता तथा ऋषियों का दर्शन होता है, और वे उसके काम आते हैं, यथा—

सुनि रिधिसिधि अनिमादिक आईं ।
आयसु होइ सो करहिं गोसाईं ॥

ईश्वरप्रणिधान—

ईश्वर में सब कर्मों के अर्पण को ईश्वर प्रणिधान कहते हैं, इसमें समाधि सिद्धि होती है, यथा—

जो कछु करइ कर्म मन बानी।
वासुदेव अर्पित नृप ज्ञानी ॥

३—आसन—

जिस भाँति स्थिर होकर सुख से बैठ सके, उसे आसन कहते हैं, यथा—

बैठे वट तर करि कमलासन।
एक बार प्रभु सुख आसीना।

प्राणायाम से द्वन्द्व वाधा नहीं करता।

४—प्राणायाम—

आसन सिद्धि में श्वास प्रश्वास की गति रुक कर आप से आप प्राणायाम होता है, यथा—

कर जोग समीरन साधि समाधि कै,
धीर बड़ो बसहू मनमो।

इससे प्रकाशावरण दूर होता है, मन में धारण की योग्यता हो जाती है।

५—प्रत्याहार—

चित्त के रुकने से इन्द्रिय भी रुक जाती हैं। इसी को प्रत्याहार कहते हैं, यथा—

मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही।
बिनु मन तन दुख-सुख सुधि केही ॥

प्रत्याहार से इन्द्रियाँ पूरी तरह से वश में आ जाती हैं।

६—धारणा—

भीतर या बाहर किसी विषय में चित्त के लगा देने को धारणा कहते हैं, यथा—

जेहि विधि कपट कुरंग सङ्ग, धाइ चले श्रीराम ।
सो छवि सीता राखि उर, रटति रहति हरि नाम ॥

७--ध्यान—

उसी ओर चित्त लगाये रहने को ध्यान कहते हैं, यथा—

लगे करन रघुनायक ध्याना ।

८—समाधि—

उसी ध्यान में जब अर्थ मात्र का भान हो, और मन स्वरूप शून्य सा हो जाय, तो उसे समाधि कहते हैं । धारणा के घनीभूत होने को ध्यान, और ध्यान के घनी भूत होने को समाधि कहते हैं, यथा—

मुनिहिं राम बहु भाँति जगावा ।
जाग न ध्यान जनित सुख पावा ॥

इन आठों अङ्गों में धारणा, ध्यान, समाधि ये तीन, यमादि पाँचों की अपेक्षा सप्रज्ञात समाधि के अन्तरङ्ग है, पर निर्वीज समाधि का सम्प्रज्ञात भी बहिरङ्ग है । निर्वीज समाधि का वर्णन करते हुए श्री गोस्वामीजी कहते हैं—

सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि योगी ।
सो हरिपद अनुभवै परम सुख अतिशय द्वैत वियोगी ॥

सम यम नियम नाना प्रकार के वाण हैं । वाण लक्ष्य वेध करता है, भीतर प्रवेश करता है, और तीस वाण एक तरकस में रहते हैं, जैसा कि पहेली में कहा गया है कि—

तीस तीस मिलि बिल में बसैं ।
पंख नहीं अरु उड़ के डसैं ॥

धारणा ध्यान, समाधि, तीनों को इकट्ठा करके संयम कहते हैं । समाधि जय करने से प्रज्ञालोक होता है, इस प्रज्ञालोक को योगी

जिस विषय पर डालता है, उसी का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लेता है, यथा—

तब सङ्कर देखेउ धरि ध्याना ।
सती जो कीन्ह चरित सबु जाना ॥

यहाँ समाधि के नियमों को वाण कहा—और उनकी तीस संख्या कही । विभूति पाद में भी ठीक तीस संख्यक विभूतियाँ हैं, जो संयम से प्राप्त होती है, और प्रत्येक की प्राप्ति के लिये पृथक नियम है । एवम् संयम नियम भी तीस ही हैं ।

१—सर्वार्थता के क्षय और एकाग्रता के उदय से चित्त का समाधि परिणाम होता है, इसी भाँति भूत और इंद्रियों में धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम होता है, इन तीनों परिणामों में संयम करने से भूत भविष्य का ज्ञान होता है, यथा—

तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनि नाथा ।

२—शब्द, अर्थ और प्रत्ययों के परस्पर अध्यास से जो मेल है, उसके विभाग पर संयम करने से सब प्राणियों की बोली का ज्ञान होता है, यथा—

अस कहि गरुड़ गीध नभ गयऊ ।
तिन्ह के मन अति विस्मय भयऊ ॥

३—संस्कारों के साक्षात्कार करने से पूर्व जन्म का ज्ञान होता है, यथा—

वाल्मीकि नारद घट जोनी ।
निज २ मुखनि कही निज होनी ॥

४—चित्तवृत्ति के संयम से, दूसरे के चित्त का ज्ञान होता है, यथा—

नाथ भरत कछु पूछन चहहीं ।
प्रश्न करत मन सकुचत अहहीं ॥

५—कायरूप के संयम से, उसके ग्राह्य शक्ति के रुकने पर चक्षु के प्रकाश का संप्रयोग न होने से योगी अन्तर्ध्यान होता है, यथा—

अन्तरधान भए अस भाखी।

६—कर्म दो प्रकार का होता है, एक शीघ्र फल देने वाला, दूसरा देर से फल देने वाला, उन पर संयम करने से अरिष्टों द्वारा मरने का ज्ञान होता है, यथा—

निकट कालु जेहि आवत सांई।
तेहि भ्रम होइ तुम्हारेहि नाईं ॥

७—मैत्री करुणा मुदिता में संयम करने से योगी को मित्रता आदि बल होता है, यथा—

पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता।

८—बलों में संयम करने से हाथी का बल होता है, यथा—

अमित नाग बल बिपुल बिसाला।

बल का नाप हस्ति बल से है, जैसे आज कल अश्व बल से नाप होता है।

९—संयम द्वारा ज्योतिष्मती[1] प्रवृत्ति को जीतकर, उसके प्रकाश डालने से सूक्ष्म व्यवहित और विप्रकृष्ट का ज्ञान होता है, यथा—

तब सङ्कर देखेउ धरि ध्याना।
सती जो कीन्ह चरित सबु जाना ॥

१०—सूर्य्य में संयम करने से भुवन का ज्ञान होता है, यथा—

विश्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा।

११—चन्द्रमा में संयम करने से तारा व्यूह का ज्ञान होता है, यथा—

अगनित उडगन रवि रजनीसा।

१२—ध्रुव में संयम करने से उनकी गतिका ज्ञान होता है, यथा—

---

१ अस्मितामात्रा प्रवृत्ति को ज्योतिष्मती कहते हैं।

ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग॥

१३—नाभिचक्र में संयम करने से शरीर रचना का ज्ञान होता है, यथा—

नर तन सम नहिं कवनिउ देही।

शरीर की रचना ही ऐसी है।

१४—कण्ठ कूप में संयम करने से भूख प्यास की निवृत्ति होती है, यथा—

संवत सप्त सहस्त्र पुनि, रहे समीर अधार।

१५—कूर्म नाड़ी में संयम करने से स्थिरता होती है, यथा—

भूमि न छाड़त कपि चरन।

१६—मूर्द्ध ज्योति के संयम करने से सिद्धोंका दर्शन होता है, यथा— नारदादि सनकादि मुनीसा।

१७—प्रतिभा से सब ज्ञान होता है, यथा—

गुरु विवेक सागर जग जाना।
जिनहिं विश्व कर बदर समाना॥

१८—हृदय में संयम से चित्त का ज्ञान होता है, यथा—

मोहि अतिसय प्रतीत मन केरी।

१९—बुद्धि और आत्मा अत्यन्त भिन्न है, इनके भेद रहित बोध से भोग सिद्ध होता है, पर यह भोग बुद्धि के लिये है, अपने लिये न जान कर, अपने को बुद्धि से पृथक् जान कर, संयम करनेसे आत्मज्ञान होता है, यथा—

मैं तैं मेट्यो मोह तम ऊगो आतम भानु।

२०—बँधकारण शिथिल होने से और प्रचार संवेदन से, चित्त का परशरीर में प्रवेश होता है, यथा–तीय अधर बुधिरानि।

२१—उदान के जीतने से जल कीच काँटा आदि से असङ्ग और इच्छा-मरण होता है यथा—

तजौं न तनु निज इच्छा मरना।

२२—समान के जय से तेज होता है, यथा—

कनक बरन तन तेज विराजा।

२३—श्रोत्र और आकाश दोनों के सम्बन्ध में संयम करने से दिव्य श्रोत्र होता है, यथा—

सुनत गिरा विधि गगन बखानी।

२४—शरीर और आकाश के सम्बन्ध में संयम से, और लघु तूल आदि में संयम होने से, आकाश गमन होता है, यथा—गगनोपरि हरि गुन गन गाये।

२५—अकल्पिता महा विदेहा[2] जो बाहर कीवृत्ति है, उससे प्रकाश के आवरण का क्षय होता है, यथा—प्रबल अविद्या तम मिटि जाई।

२६—स्थूल स्वरूप सूक्ष्म, अन्वय[3], अर्थवत्व[4], में संयम करने से भूत जय होता है, इससे अणिमादिकों की उत्पत्ति और काय-सम्पत् होती है, यथा—

सुनतहिं भएउ पर्वताकारा।
कनक बरन तन तेज बिराजा॥

२७—ग्रहण स्वरूप, अस्मिता, अन्वय, अर्थवत्व में संयम करने से इन्द्रियों का जय होता है। इन्द्रिय जय से मनोजवित्व और विकरण भाव होता है, तथा योगी प्रधान को जीतता है, यथा—

मनोजवं मारुत तुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतांवरिष्ठम्।

---

२ शरीर से बाहर मन की वृत्ति के लाभ करने को विदेह धारणा कहते है। जो इस कल्पना से वाह्य देश में धारणा की जाती है उसको कल्पिताविदेहा कहते हैं। शरीर की अपेक्षा न करके वहिर्भूत मन की जो वहिर्वृत्ति है वही अकल्पिता महा विदेहा है।

३ सत्व रज तम इन तीनों गुणों को, जिनका कार्य्य रूप होने का स्वभाव है, अन्वय कहते हैं।

४ सत्वादि गुणों का तथा उनके कार्य्यों का भोग तथा अप वर्ग के निमित होना अथवत्व है।

२८—सत्व (बुद्धि) और पुरुष के भिन्न होने का जिसे ज्ञान है, केवल उसी को सब भावों का अधिष्ठाता होना, और, सबका ज्ञाता होना, सिद्ध होता है, उसमें भी वैराग्य होने से दोष बीजों के नाश होने पर कैवल्य मोक्ष होता है, यथा—

जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई।
सो कैवल्य परम पद लहई॥

२९—क्षण और उनके क्रमों में संयम करने से विवेकज ज्ञान होता है, यथा—

होइ विवेकु मोह भ्रम भागा।

३०—सत्व और पुरुष दोनों की शुद्धि सम होने से मुक्ति होती है, यथा—

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद।
संत पुरान निगम आगम वद॥

इस भाँति विषय भेद से संयम नियम भेद भी तीस प्रकार के हैं। सुगम मार्ग से भगवत्प्राप्ति भक्ति योग से होती हैं, यथा—

भगतिके साधन कहौं बखानी।
सुगम पंथ मोहिं पावहिं प्रानी॥
प्रथमहिं विप्र चरन अति प्रीती।
निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥
येहि कर फल मन विषय बिरागा।
तब मम धर्म उपज अनुरागा॥
श्रवनादिक नव भगति दृढ़ाहीं।
मम लीला रति अति मन माहीं॥
सन्त चरन पंकज अति प्रेमा।
मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा।
सब मो कहँ जानै दृढ़ सेवा॥

मम गुन गावत पुलक सरीरा।
गद गद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दम्भ न जाके।
तात निरन्तर बस मैं ताके॥
वचन करम मन मोरि गति, भजनु करहिं निहकाम।
तिन्हके हृदय कमल महँ, करौं सदा विश्राम॥

बिराग—चार प्रकार का विराग क्रम से होता है:—(१) यतमान संज्ञा (२) व्यतिरेक संज्ञा। (३) एकेन्द्रिय संज्ञा और (४) वशीकार संज्ञा।

(१) यतमान संज्ञा—रागादि दोष चित्त में जमें रहते हैं, उन्हीं से इन्द्रियाँ विषयों में प्रवृत्त होती हैं। वे विषयों में प्रवृत्त न हों, इसलिये प्रयत्न का प्रारम्भ करना, यतमान वैराग्य है, यथा—

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती।
सब तजि भजनु करौं दिन राती॥

(२) उपर्युक्त प्रयत्न आरम्भ कर देने पर कुछ दोष तो पके हुए हैं, और कुछ कच्चे हैं, सो पके हुवों को सन्तुष्ट होकर त्याग करने को व्यक्तिरेक संज्ञा वैराग्य कहते हैं, यथा—

बरबस राज सुतहिं तब दीन्हा।
नारि समेत गवन बन कीन्हा॥

(३) दोषों के परिपक्व होने से, इन्द्रिय प्रवृत्त होने में असमर्थ है, पर मन में उत्सुकता मात्र होने को एकेन्द्रिय संज्ञा वैराग्य कहते हैं, यथा—

उर कछु प्रथम वासना रही।

(४) उत्सुकता मात्र की भी निवृत्ति हो जाने पर, उपर्युक्त तीनों अवस्थाओं से परे दिव्यादिव्य विषयों में उपेक्षा बुद्धि वशीकार संज्ञा वैराग्य है, यथा—

मनतें सकल वासना भागी।

इस वैराग्य को ऊपर कलहंस से उपमित कर आये हैं।

उपर्युक्त विराग को अपर वैराग्य कहते हैं। यह अपर वैराग्य पर-वैराग्य का कारण है। दृष्ट तथा आनुश्रविक विषयों में दोष देखने वाले विरक्त की बुद्धि, जब पुरुष (आत्मा) के दर्शन के अभ्यास द्वारा शुद्धि के विवेक से समृद्ध हो उठती है, तब उसे, व्यक्ताव्यक्त धर्मी गुणों से भी वैराग्य हो जाता है, यहीं पर वैराग्य है। इस भाँति पर—वैराग्य भी दो प्रकार का है। सो उत्तर वैराग्य तो ज्ञान का प्रसाद मात्र है, यथा—

कहिय तात सो परम विरागी।
तृन समसिद्धि तीन गुन त्यागी॥

तथा—

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहौं निरवान।

तेसब—भाव यह कि चारो पुरुषार्थ, नवरस, जप, तप, जोग और विराग, जिनका वर्णन श्रीरामचरितमानस में किया गया है, अति घनिष्ठ सम्बन्ध है। श्रीरामचरितमानस में ही ये प्रयुक्त हैं, और श्रीराम-चरित मानस से ही इनका जीवन है, पर इनका प्रचार चरित्र के निकटवर्ती देश नाम और रूप में भी होता है, यथा—रङ्गभूमि प्रवेश के समय अखिल रसामृत मूर्ति दिखाई पड़ी, यथा—

शृङ्गार—

जनु सोहत सिंगारु धरि, मूरति परम अनूप।

हास्य—कुमुद बन्धु कर निन्दक हासा।
वीर—मनहुँ बीर रस धरे शरीरा।
भयानक—मनहुँ भयानक मूरति भारी।
अद्भुत—बहु मुख कर पग लोचन सीसा।
शान्त—संत सुद्ध सम सहज प्रकासा।
करुणा—सिसु सम प्रीति न जाति बखानी।
वीभत्स—तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा।
रौद्र—देखहिं रूप महा रन धीरा।
इसी भाँति रसों का प्रचार नाम से भी है, यथा—

रघुवीर, खरारि, दीनदयाल, राम आदि नाम से वीर, करुणा शान्तादि रस सूचित होते हैं। चारो पुरुषार्थ जप, तप, जोग और विराग का भी इसी भाँति नाम और रूप में प्रचार है।

जलचर चारु तड़ागा—इन्हें इस सुन्दर तालाब का जलचर कहा। ये मकर, उरग, दादुर कमठ हैं। ये तालाब में तो रहते ही हैं। तालाब ही इनका जीवन भी है, पर तालाब की प्रान्तभूमि में भी इनका प्रचार है। यह बात मछली में नहीं है, मछली का न तालाब के बाहर प्रचार है, और न जल के बाहर जी सकती है। इसीलिये धुनि अवरेब कवित गुन जाति को मछली कहा, औंर 'अरथ धरम कामादिक चारी' नवरस जप नव जोग विराग को जलचर कहा।

जिस भाँति जलचरों का तालाब भर में विचरण होता है, उसी भांति सम्पूर्ण श्रीरामचरितमानस में अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, ज्ञान, विज्ञान, नवरस, जप, तप, जोग, विराग मिलैंगे। इनसे तालाब की शोभा है, पर इनकी जलचर से उपमा देकर ग्रन्थकार सचेत किये देते हैं, कि इनके वश में न आ जाना। इनसे परिचय रखना, इनसे बिरोध न करना, इनसे काम निकालना, पर इनके वश में आने से मूल हानि है, तालाब में अवगाहन का आनन्द ही नष्ट हो जायगा, या ज्ञानविज्ञान मकर के वशीभूत होने से अपना अस्तित्व ही खो बैठोगे, अर्थात् मुक्त हो जावोगे, और यहाँ सिद्धान्त यह है कि 'सगुन उपासक मोच्छ न लेहीं।'

यह तड़ाग इतना सुन्दर बना है, कि इसमें आने पर, जिस हानि की सम्भावना से ग्रन्थकार चेतावन देते हैं, वह संसार के लिये परम अलभ्यलाभ है।

अथवा दिव्य तड़ाग के जलचर भी दिव्य हैं।

> सुकृती साधु नाम गुन गाना।
> ते बिचित्र जल बिहंग समाना॥
> संत सभा चहु दिसि अँवराई।
> श्रद्धा रितु बसंत सम गाई॥ ६॥

अर्थ—पुण्यात्मा, साधु और भगवन्नाम का गुण गान, ये ही विचित्र जल पक्षियों के समान है, चारों ओर की सन्त सभाएँ ही आम की बारियाँ है, और उनमें श्रद्धा ही बसन्त ऋतु के समान कही गई है।

सुकृती—पुण्यवान् को कहते हैं। सो श्रीराम यश के साथ पुण्यात्माओं का भी गुणगान किया गया है। इस संसार में ऐसे लोग भी हैं, जो अपने पेट पालने भर भी नहीं कमा सकते, और ऐसे पुरुषार्थी भी हैं, जिन्होंने अपने तथा अपने कुटुम्बियों के लिये यथेष्ट कमा लिया। फिर भी प्रभूत धन धान्य शेष रहा, तो उससे अन्न सत्र लगा दिया। जिसमें अवारित-द्वार अन्ध, पंगु, पापी, दीन, दुखी सभी अल्प पुरुषार्थियों को अन्न दिया जाता है। इसी भाँति श्रीरामावतार स्वायम्भूमनु और सतरूपा का पुण्यसत्र है, जिन्होंने स्वयम् भगवत्साक्षात्कार किया, और संसार भर को साक्षात्कार कराने के लिये वर माँगा कि—

'चाहौं तुम्हहिं समान सुत प्रभु सन कवन दुराव'।

पुत्र रूप से अवतीर्ण होने पर संसार दर्शन करके तरे और बाद उसके श्रीराम यश का गान करके, सदा लोग भवसागर तरते जाँय। अतः सब से बड़े सुकृती तो यहाँ रानियों के सहित महाराज दशरथ हैं। जिन्हें स्वयम् वशिष्ट जी कहते हैं, कि—

तुम्ह तें अधिक पुन्य बड़ काकें।
राजन राम सरिस सुत जाकें॥
इन सम कोउ न भयेउ जग माहीं।
है नहिं कतहूँ होनेउ नाहीं॥

ऐसे ही पुण्यवान् रानियों के साथ महाराज जनक हैं, यथा—

जनक सुकृत मूरति बैदेही।
दशरथ सुकृत राम धरे देही॥
सुकृती तुम्ह समान जग माहीं।
भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं॥

महाराज दशरथ के सनेहसङ्कोच से रामजी अवतीर्ण हुए, महाराज जनक के सनेहसङ्कोच से जगदम्बा सीता जी अवतीर्ण हुईं।

सभी अवधवासी तथा जनकपुर निवासी पुण्य पुंज हैं, यथा—

हम सम पुन्य पुञ्ज जग थोरे।
जिनहि रामु जानत करि मोरे॥

यह बात स्वयम् अवधवासी कह रहे हैं, इसी भाँति जनकपुरवासी कहते हैं,

हम सब सकल सुकृत के रासी।
भये जगजनमि जनकपुरवासी॥

बालकाण्ड में अधिकतर इन्हीं सुकृतियों का गुन गान है।

जब प्रभु बन को चले तो मगवासी लोग कहते हैं,

एक कहहिं हम बहुत न जानहिं।
आपुहि परम धन्य करि मानहिं॥
ते पुनि पुन्य पुंज हम लेखे।
जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे॥

चित्रकूट के बिहग मृग, बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्य पुंज सब धन्य अस, कहहिं देव दिन राति॥

प्रभु चित्रकूट में बसे, इसलिये देवता ऐसा कहते हैं, आरण्य के लियें स्वयम् अगस्त्यजी कहते हैं,

दंडक बनु पुनीत प्रभु करहू।
उग्रसाप मुनि वर कर हरहू॥

किष्किन्धा में—

जब सुग्रीव राम कहुँ देखा।
अतिसय जन्म धन्य करि लेखा॥

अहो भाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव, सेव्य जुगल पद कंज॥

लङ्का के विषय में गोस्वामी जी कहते हैं—

एहि लागि तुलसीदास इन्हकी कथा कछु एक है कही ।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही ॥

उत्तर के विषय में भगवान् शङ्कर कहते हैं,

उमा अवधवासी नर नारि कृतारथ रूप ।
ब्रह्म सच्चिदानन्द घन रघुनायक जहँ भूप ॥

अतः श्रीराम यश के साथ ही सुकृतियों की कथाएँ हैं, बहुत बड़े सुकृती देवता लोग भी हैं जिन्होंने अपने सुकृत से देवत्व लाभ किया है ।

साधु—श्रीग्रन्थकार ने वेष को साधु का लक्षण नहीं माना । क्योंकि कपटी पापी दुष्ट भी, जिनका कहीं ठिकाना नहीं हैं, वे भी बड़ों के वेष का आश्रयण कर लेते हैं, और साधु भी पूजा से बचने के लिये कहीं कहीं तामसिकों का वेष धारण किये हुए मिलते हैं, यथा—

लखि सुवेष बग बञ्चक जेऊ ।
वेष प्रताप पूजिअहि तेऊ ॥
उघरहिं अंत न होइ निबाहू ।
कालिनेमि जिमि रावन राहू ॥
कियेहुँ कुवेष साधु सनमानू ।
जिमि जग जामवन्त हनुमानू ॥
कह नृप जे बिज्ञान निधाना ।
तुम्हसारिखे गलित अभिमाना ॥
सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ ।
सब विधि कुसल कुवेष बनाएँ ॥

तुलसी देखि सुवेषु, भूलहि मूढ़ न चतुर नर ।
सुदर केकिहि पेखु, बचन सुधा सम असन अहि ॥

दुष्ट लोग साधु की सब नकल उतार लेते हैं, पर एक नकल उनकी उतारी नहीं उतरती, अतः गोस्वामी जी ने वही लक्षण साधु का दिया, यथा—

उमा संत कइ इहइ बड़ाई।
मंद करत जो करै भलाई॥

बुराई करने वाले के साथ भलाई सिवा सन्त के कोई कर नहीं सकता।

उपकार ही साधु का अव्यभिचारी लक्षण है। जगत् का उपकार सदा दो से ही होता आया है, या भगवत् से या भागवत से, यथा—

हेतु रहित जग जुग उपकारी।
तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
पर उपकार बचन मनकाया।
संत सहज सुभाव खगराया॥

श्रीरामचरितमानस में स्थान स्थान पर साधु गुणगान है, पर भगवत् चरित के साथ पाँच महा भागवतों का चरित सविस्तार गान किया गया है—(१) उमा चरित (२) शम्भु चरित (३) भरत चरित (४) हनुमत् चरित और (५) भुसुण्डि चरित।

१—उमा चरित के वक्ता याज्ञवल्क्यजी और श्रोता भरद्वाज जी हैं। भगवती उमाने जगत् के कल्याण के लिये, अपने माया मोहित होने का चरित दिखलाया, जिसमें रामजी के सीता विरहादि मानव चरित्र को देख कर, किसी को प्रभु के मनुष्य होने का भ्रम न हो और वह प्रभु के अवतार के महालाभ से वञ्चित न हो, नहीं तो जिस प्रभु को निषाद ने पहिचाना, कोल, किरात ने पहिचाना, उन्हें महामाया जगत् जननी न पहिचाने यह सम्भव नहीं है। अतः जगत् के उपकार लिये महामाया ने इतना कष्ट स्वीकार किया।

२—शम्भु चरित—उमा चरित के बाद शम्भु चरित है, यथा—

उमा चरित सुंदर मैं गावा।
सुनहु संभुकर चरित सोहावा॥

शम्भु चरित के भी वक्ता याज्ञवल्क्यजी और श्रोता भरद्वाज जी हैं। शम्भु भगवान् ने जानकी वेष धारण करने से, सती का परित्याग करके भक्ति पथ को पुष्ट किया, यथा—

जो अब करउँ सती सन प्रीती।
मिटै भगति पथु होइ अनीती॥

तथा गार्हस्थ्य जीवन का परित्याग करके हरि भजन में लग गये। जगत् के कल्याण के लिये, जगत् के आर्त्ति हरण के लिये, फिर उमा का पाणिग्रहण किया। उमा शम्भु चरित का वर्णन बाल के पूर्वार्ध में है।

३—भरत चरित—भरत चरित के वक्ता श्रीगोस्वामीजी और श्रोता साधु मण्डल हैं। वह चरित तो भक्ति शास्त्र का हृदय है। भरतजी, गुरू जी की सम्मति, माता लोगों की सम्मति, मन्त्रियों की सम्मति तथा पिता की आज्ञा को भी नहीं मानते, कहते हैं।

मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं।
रसा रसातल जाइहि तबहीं॥

यह भरत जी का कार्पण्य या दैन्य नहीं है, यह भरतजी की जगत् हितैषिणी दृष्टि है। भरतजी समझ रहे हैं कि मेरा राज्य ग्रहण करना, इस नीति को प्रमाण देना है कि लोग बाप को मरने दें, भाई को मार भगावें, पर सम्पत्ति हाथ से न जाने दें।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

राजा का अनुवर्तन प्रजा करेगी, और पापी हो जावेगी, इसीलिये कहते हैं, कि—

रसा रसातल जाइहि तबहीं।

भरत चरित गृहस्थों का ही सर्वस्व नहीं, साधुओं का भी प्राण है। इसका वर्णन अयोध्या उत्तरार्ध में है।

४—हनुमत चरित—इसके वक्ता जाम्बवान्जी और श्रोता स्वयम् रामचन्द्र हैं, यथा—

पवन तनय के चरित सुहाए।
जामवन्त रघुपतिहिं सुनाए॥

यह चरित्र तो ऐसा लोकोत्तर है, कि चरित्र नायक का अपना कोई स्वार्थ ही नहीं है। जो कुछ करते हैं परमार्थ के लिये और वहाँ भी अपना कोई अर्थ नहीं; सरकार की कृपा मात्र ही इनके लिये परम लाभ है, यथा—

करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना।
निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

इनके लिये स्वयम् रामजी कहते हैं—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहिं कोउ सुरनर मुनि तनु धारी॥

सीताजी का समाचार देकर इन्होंने रामजी को ऋणी बनाया। प्राणदान दे कर लक्ष्मण को ऋणी बनाया। रावण वध का समाचार देकर जानकी जी को ऋणी बनाया और प्रभु के आगमन का समाचार देकर भरत जी को ऋणी बनाया। सुन्दर काण्ड के पूर्वार्ध में यह कथा है।

५—भुसुण्डि चरित—इसके वक्ता स्वयम् भुसुण्डिजी और श्रोता गरुड़जी हैं, यथा—

सब निज कथा कहौं मैं गाई।

ये महात्मा भजन के ऐसे रसिक हैं कि सामर्थ्य रहते गुरुजी की दी हुई काक शरीर त्याग नहीं करते, कहते हैं कि—

राम भगति एहि तन उर जामी।
तातें मोहि परम प्रिय स्वामी॥
तजौं न तनु निज इच्छा मरना।
तन बिनु बेद भजन नहिं बरना॥

कथा के ऐसे रसिक हैं, कि सत्ताईस कल्प से कथा ही कहते चले जा रहे हैं। राम रहस्य के ये ही वक्ता हैं, सतपंच चौपाई में इन्होंने ही परमार्थ का सार कहा है। उत्तर के उत्तरार्ध में यह कथा है।

इनके अतिरिक्त चौदह प्रकार के भक्तों का वर्णन 'प्रेम भगति जो बरनि न जाई' इस चरण की व्याख्या करते हुए कह चुके हैं।

नाम—उस अनाम के अनन्त नाम हैं। उस सगुण निर्गुण रूप के अनन्त गुण हैं। उन्हीं गुणों के अनुसार नामों की कल्पना है। उन सब नामों में प्रणव की बड़ी महिमा है। उपनिषदों में प्रणव की ही महिमा भरी पड़ी है। योग शास्त्र भी प्रणव की ही महिमा का गान करता है। परन्तु प्रणव में सब का अधिकार नहीं है। केवल प्रणव के उच्चारण का अधिकार सन्यासियों को ही है। द्विजाति गृहस्थादि अन्य शब्द के योग से प्रणव का उच्चारण कर सकते हैं। यहाँ गोस्वामी जी का यह मत है कि 'कीरति भनिति भूतिभलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई' अतः गोस्वामीजी ने प्रणव के स्थान में राम नाम का ग्रहण किया। राम नाम भी प्रणव का रूपान्तर है। प्रणव को तारक और राम नाम को राम तारक कहते हैं।

प्रणव विधि हरिहरमय है, वेद का प्राण है और निर्गुण सगुण रूप है। इसी भाँति राम नाम भी 'विधि हरिहर मय वेद प्राण सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो' है। सभी जप करने वालों का यह अनुभूत विषय है, कि अर्धमात्रा की ध्वनि जैसी प्रणवोच्चारण में उठती है, वैसी ही ध्वनि राम नामोच्चारण में उठती है और किसी नाम के जप में वैसी ध्वनि नहीं उठती, तिस पर नारदजी को वरदान है।

राम सकल नामन्ह ते अधिका।
होउ नाथ अघखग गन बधिका॥

इसीलिये गोस्वामी जी राम नाम को चन्द्र कहते हैं, गोस्वामी जी ही क्यों सभी रामचन्द्र कहता है। पहिले उपोद्घात में कह आया हूँ, कि चन्द्रोदय में मानस सर की बड़ी शोभा होती है, इसी भांति राम नाम से श्रीरामचरितमानस की बड़ी शोभा है। ग्रन्थकार कहते हैं—

राकारजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडुगन बिमल, बसहु भगत उर व्योम॥

भक्ति शरद पूर्णमासी की रात है, राम नाम चन्द्र हैं और दूसरे नाम हरि मुकुन्द आदि तारे हैं। ये भक्त के हृदयाकाश में बसते हैं, चाँदनी कहनी शेष रही, अतः दूसरा दोहा आया—

राम चरित राकेस कर, सरिस सुखद सब काहु ।
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित बिशेष बड़ लाहु ॥

इससे पता लगा कि राम चरित ही उस चन्द्र की चाँदनी है। स्मरण रहना चाहिये, कि यह चरित जो नाम से विनिःसृत होता है अध्यात्मिक चरित है। इसका उल्लेख अध्यात्मिक अर्थ का वर्णन करते समय आ चुका है, यथा—

राम भगत हित नर तनु धारी ।
सहि संकट किये साधु सुखारी ॥
नाम सप्रेम जपत अनयासा ।
भगत होहिं मुदमंगल बासा ॥

इत्यादि। ताराओं की भी महिमा एक से एक अधिक है, यथा—

(यद्यपि) प्रभु के नाम अनेका ।
श्रुति कह अधिक एक त एका ॥

आकाश के तारों में प्रसिद्ध तारकों के गुच्छे हैं, जिन्हें नक्षत्र कहते हैं। जैसे अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी आदि। इसी भाँति भक्त के हृदयाकाश के बसने वाले (गौण) नामों में भी गुणों के गुच्छे हैं, जिन्हें स्तुति कहते हैं। कहना नहीं होगा, कि चन्द्रज्योत्स्ना, तारक तथा नक्षत्र मण्डल ज्यों के त्यों श्रीरामचरितमानस में प्रतिबिम्बित है।

१—अश्विनी—इसमें ३ तारे हैं. रूप तुरंग-मुख सा है। यह ब्रह्म स्तुति है इसका फल है 'जग मंगल (गुनग्राम राम के)। गुणग्राम में भी ३ तीन तारे चमकते हैं। सिन्धु सुता प्रियकंता' से विष्णु, 'जेहिं सृष्टि उपाईं' से नारायण (क्षीरशायी), और सच्चिदानंद से ब्रह्म। तीनों की स्तुति यह है। ब्रह्म विद्या के उपदेष्टा भगवान् हयग्रीव हैं, और इसमें ब्रह्मविद्या का निरूपण है, अतः इसकी हयग्रीव सी आकृति मानी। इससे जग मङ्गल हुआ।

२—भरणी —इसमें भी तीन तारे हैं, यह कौसल्याकृत स्तुति है। फल है 'दानिमुकुति धन धरम धाम के'। इस स्तुति में तीन वेदोक्तियाँ

हैं, वे ही तीन तारे चमकते हैं, इससे चौरासी लाख योनियों से मुक्ति होती है। श्रीकन्त की स्तुति है, अतः धन धर्म की दात्री है, 'हरि पद पावहिं' कहने से धाम की दात्री है।

३—कृत्तिका—इसमें ६ तारे हैं छुरे सी आकृति है। यह अहिल्या कृत स्तुति है। फल, सद्गुरुज्ञान विराग जोग के, इस स्तुति में अहिल्या की ६ क्रियायें, ६ तारे हैं...(१) शरण आईं (२) शाप को अनुग्रह माना (३) दर्शन किया (४) वरदान मांगा (५) कृतकृत्य हुईं (६) प्रति लोक गईं। पाप को छुरे की भाँति काटा, इससे छुरे का आकार माना। 'प्रभु कह चीन्हा, से ज्ञान का' शाप को अनुग्रह मानने में विराग का। 'मम मन मधुप करै पाना' से योग का सद्गुरु कहा।

४—रोहिणी—इसमें ५ तारे हैं, आकार शकट सा है। यह परशुराम कृत स्तुति है, फल है, विवुध वैद भवभीम रोग के। इसमें भानु, कृसानु, सागर, हंस और केतु इन पाँच वस्तुओं से उपमा दी, येही तारे हैं। धर्म रथ की सब बातें संक्षेप में दिखलाई, इसलिये शकटाकार कहा; भगवत् भागवतापराध भवभीम रोग है। उसी का क्षमापन इस स्तुति में कहा है और दोनों भाई की स्तुति है, अतः अश्विनी कुमार कहा।

५—मृगशिरा—इसमें तीन तारे हैं आकार मृग मुख सा है। यह सुनयनाकृत स्तुति है, फल है 'जननि सियराम प्रेम के'। इसमें जानकी जी का समर्पण, हाथ जोड़ कर विनय और चरण ग्रहण ये ही तीन तारे चमकते हैं। प्रेम पंक जनु गिरा समानी' कह कर मृग मुखाकार कहा, क्योंकि बोल नहीं सकतीं। 'सनेह सानी' होने से 'सियाराम प्रेमी' की जननी कहा।

६—आर्द्रा—इसमें १ तारा है, आकार मणि सा है। यह जनककृत स्तुति है, फल है 'जनक सिय राम प्रेम के'। इसमें एक तारा 'ईश की अनुकूलता चमक रही है' यही मणि है, इसी से सब सुलभ हुआ। 'बोले बचन प्रेम जनु जाये' कह कर 'जनक सिय राम प्रेम के' कहा।

७-पुनर्वसु—इसमें चार तारे हैं, आकार गृह सा है। यह भरद्वाजकृत स्तुति है, फल है 'बीज सकल व्रत धरम नेम के'। इसमें (१) फल, (२) आशा, (३) भक्ति और (४) सुख येही चार तारे चमकते हैं। यहाँ फल, लाभ, आशा आदि गृह धर्म दिखलाई दे रहे हैं, अतः गृहाकार कहा। इसमें तप, तीर्थ, त्याग, जप, जोग और विराग का फल मिला है, और फल में ही बीज होता है, यथा—

बीज सकल व्रत धरम नेम के।

८-पुष्य—इसमें ३ तारे हैं, आकार बाण सा है, यह बाल्मीकिकृत स्तुति है, फल है 'समन पाप संताप सोक के' इसमें राम लक्ष्मण जानकी, ये तीन तारे चमकते हैं। इस स्तुति में लक्ष्यवेध हुआ, नर वेष में असली रूपकी पहिचान हुई, अतः शराकार माना। 'जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई' कह कर पाप सन्ताप शोक का शमन होना कहा।

९-अश्लेषा—इसमें ५ तारे हैं, आकार चक्र सा है, यह अत्रिकृत स्तुति है। फल है, 'प्रिय पालक परलोक लोक के' इसमें भजन ही पाँच स्थानों में तारों की भांति चमक रहा है—(१) भजामिते पदांबुजं (२) भजे सशक्ति सानुजं (३) भजंति हीनमत्सराः (४) भजंति मुक्तये (५) भजामि भाववल्लभं। भक्ति से उपक्रम करके भक्ति से उपसंहार करते हैं, अतः चक्राकार माना 'ते पदं व्रजंति' कह कर परलोक का पालक कहा, भक्ति संयुत कह कर इस लोक का पालक भी कहा।

१०-मघा—इसमें ५ तारे हैं, भवन सा आकार है। यह शरभङ्गकृत स्तुति है, फल है सचिव भूपति विचार के' इसमें (१) आगमन श्रवण (२) दर्शन (३) प्रभुको ठहराना (४) भक्ति प्राप्ति (५) रामजी को हृदय में बसाना, ये पांच तारे चमकते हैं। अपने हृदय को भवन बनाया, अतः यह स्तुति भवनाकार मानी गई। अध्रुव साधन को देकर ध्रुव पद लिया, अतः विचार का सचिव कहा।

११-पूर्वाफाल्गुनी—इसमें दो तारे हैं, आकार मन्च सा है। यह सुतीक्ष्णकृत स्तुति है। फल है 'सुभट भूपति विचार के'। इसमें

दो तारे चमकते हैं। रूप और गुण। रूप के साथ नौमि कहते हैं और गुण के साथ ऋतु कहते हैं। यहाँ भी हृदय में बसाते हैं पर स्थिरता नहीं है, कहीं उसे वन, कहीं घर, कहीं आकाश बतला रहे हैं अतः मञ्चाकार कहा, मञ्चको जहाँ चाहे तहाँ रख सकते हैं। विचार में आगे बढ़ते चले जाते हैं, इस लिये 'सुभट विचार' के कहा।

१२--उत्तरा फाल्गुनी---इसमें दो तारे हैं, आकार शय्या सा है। वह अगस्त्यकृत स्तुति है, फल है 'कुंभज लोभ उदधि अपार के'। इसमें दो तारे चमकते हैं, सगुण और निर्गुण। यहाँ भी हृदय में बसाते हैं, और साथ ही साथ सरकार के सभी प्रिय गुणों को भी स्थान देते हैं, अतः शय्या का आकार माना। इसमें जगत् की अनित्यता कही, अतः इसे 'कुम्भज लोभ उदधि अपार के' कहा। यहाँ कुम्भज शब्द देकर स्पष्ट दिखला दिया कि यह अगस्त्यजी की स्तुति का फल हैं।

१३--हस्त---इसमें ५ तारे हैं आकार हाथ सा है। यह जटायुकृत स्तुति है। फल है काम कोह कलिमल करि गन के। केहरि सावक जन मन वनके। यहाँ पाँच क्रियाएँ पाँच तारा हैं---(१) नित नौमि राम कृपाल (२) नित नौमि राम अकाम प्रिय (३) हृदय में बसाना (४) हृदय पंकज का भृङ्ग बनाना (५) अविरल भक्ति प्रार्थना। सरकार ने अपने हाथ से क्रिया की, अतः इसे हस्ताकार माना। कामादि खलदल गंजनं कह कर काम कोह कलिमल करि गन के केहरि सावक कहा।

१४--चित्रा--इसमें १ तारा है आकार मोती सा है। यह हनुमान कृत स्तुति है। फल है अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। इसमें एक तारा प्रभु बार बार चमक रहा है। यह हनुमानजी की मति रूपीसीप में स्वाती सरस्वती की कृपा से स्तुति उत्पन्न हुई है अतः इसे मोती माना। यहाँ हनुमान रूप रुद्र को अतिथि रूप में भगवत्प्राप्ति हुई अतः इस स्तुति को अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के कहा।

१५--स्वाती--इसमें १ तारा है आकार बिद्रुमसा है। यह विभीषणकृत स्तुति है फल है कामद घन दारिद दवारि के। इस स्तुति में

भी एक तारा शरण चमक रहा है। स्तुति में राग झलकता है आर्त्ति हरण और सुख प्राप्ति की कामना है इससे विद्रुम माना। सरकारने प्रसन्न होकर लङ्का दे दी अतः कामद घन दारिद दवारि के कहा।

१६–विशाखा—इसमें ४ तारे हैं, आकार तोरणसा है। यह देवकृत स्तुति है, फल है 'मन्त्र महामनि विषय व्याल के' इस स्तुति में (१) प्रभु के इस अवतार की दया (२) सदा से दया (३) अधम के निज पद देने पर आश्चर्य्य (४) शरणागत। येही चार तारे चमक रहें हैं। ये पद असम्बद्ध से हैं, फिर भी विनय के गुण में गुथे हैं, इससे तोरणाकार कहा। भक्ति के विसारने से देवता भी भव प्रवाह में पड़े हैं, इस उक्ति के कारण इसे विषय व्याल का महामणि मन्त्र कहा।

१७–अनुराधा—इसमें ४ तारे हैं, आकार भक्त (भात) पुंज सा है। यह ब्रह्माकृत स्तति है, फल है 'मेटत कठिन कुअङ्क भाल के' इस स्तुति में एक बार जप और तीन बार नमामि येही चार तारे चमकते हैं। विभेद करी मति हरण करने के लिये प्रार्थना है, अतः सब एक सा हो जायगा, अतः इसे भात के पुंज का आकार माना। जब सुख को भी दुःख सा मान लिया तब भाल कुअङ्क करेहोगा क्या ?

१८–ज्येष्ठा—इसमें ३ तारे हैं आकार कुण्डल सा है। इन्द्रकृत स्तुति है। फल है 'हरन मोहतम दिन कर करसे' इस स्तुति में (१) प्रभु का हृदय में निवास मांगना (२) भक्ति मांगना (३) आज्ञा मांगना येही तीन तारे चमकते हैं। 'राम शोभा धाम' स्तुति प्रारम्भ करके 'राम नमामि' से उपसंहार करने से कुण्डलाकार कहा। इसमें अपने मान का नाश कहा गत मान प्रद दुख पुंज' इससे 'हरन मोह तम दिन कर कर से' सिद्ध हुआ।

१९–मूल—इसमें १० तारे हैं, आकार सिंहपुच्छ सा है। शङ्कर-कृत स्तुति है, फल है 'सेवक सालि पाल जल धर से' इस स्तुति में दश (महामोह, संशय, भ्रम, कामादि विषय मनोरथ, भव, भय,

दीनता आर्ति और त्रास) का नाश, येही दश तारे हैं, इस स्तुति में फिर आने की पूंछ लगी हुई है, यथा—

नाथ जबै कोसलपुरी होइहि तिलक तुम्हार।
कृपा सिन्धु मैं आउब देखन चरित उदार॥

अतः पुच्छाकार कहा, सम्पूर्ण स्तुति में सेवक की रक्षा ही कही गई है। अतः 'सेवक सालि पाल जल धर' से कहा।

२०–पूर्वाषाढ़—इसमें दो तारे हैं, आकार गजदन्त सा है। यह वेद स्तुति है। फल है 'अभिमत दानि देव तरुवर से' इस स्तुति में सगुण निर्गुण रूप येही दो तारे हैं। चारों वेदों को मिल कर यह अपेल प्रतिज्ञा है कि ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जसु नित गावहीं' अतः गजदन्त कहा, यथा—

कुलिस रेख गज दसन जनक पन।

२१–उत्तराषाढ–इसमें २ तारे हैं आकार मंचक सा है। यह शङ्करकृत स्तुति है फल है सेवत सुलभ सुखद हरिहर से इस स्तुति में दो वर मांगे हैं। अनपायनी भक्ति और सतसङ्ग। येही दो तारे चमकते हैं। अनाथन पाहि कह कर कहीं स्थिर अवस्थान के लिये नहीं कहते अतः मञ्चाकृति कहा।

२२–अभिजित्—इसमें ३ तारे हैं आकार त्रिकोण सा है। यह पुरजनकृत स्तुति है फल है सुकवि सरद नभ मन उडगन से। यह गुणग्राम घर में गाया जा रहा है इससे स्तुति में गणना नहीं भी की जा सकती है इस भाँति अभिजित की गणना न करके सत्ताईस नक्षत्र ही कहते हैं। इसमें (१) भजहु (२) नमत (३) कस न भजहु येही तीन तारे हैं। इसमें भजहु कह कर एक ओर चले तब नमत कह कर दूसरी ओर फिरे फिर कस न भजहु कह कर भजहु में मिल गये इससे त्रिकोण आकार कहा। तुलसीदास के प्रभु कह कर 'सुकवि सरद नभ मन उडगन से' कहा।

२३–श्रवण—इसमें ३ तारे हैं आकार त्रिविक्रम सा है। यह सनकादिकृत स्तुति है। फल है 'राम भगत जन जीवन धर से'। इसमें

(१) प्रेम भगति अनपायनी देहु (२) देहु भगति (३) देहिं भगति। येही तीन तारे चमकते हैं। त्रिभुवन भूषण कहकर त्रिविक्रमाकार कहा 'सेवक सुलभ सकल सुखदायक' से जीवन भर कहा।

२४--धनिष्ठा—इसमें ४ तारे हैं आकार मर्दल सा है। यह नारदकृत स्तुति है। फल है 'सकल सुकृत फल भूरि भोग से'। इस स्तुति में (१) पंकज लोचनादि से रूप कहा (२) 'भुजबल विपुल भार महि खंडित' आदि से लीला कहा (३) 'कोसला मंडन' से धाम कहा 'कलिमलमथन नाम ममताहन' से नाम कहा। येही चार तारे हैं। 'गावतसुरमुनि सन्त समागम' से मर्दलरूप कहा। सुखरूप भूपवर' कहकर 'भूरिभोग' रूप इस स्तुति को कहा।

२५--शततारक—इसमें सैकड़ों तारे हैं आकार वर्तुल है। यह भुसुण्डिकृत स्तुति है। फल है 'जगहित निरुपधि साधु लोग से' यहां सौ से अभिप्राय अगणित से है। सो इस स्तुति में बार बार शतकोटि शब्द चमकता है, येही तारे हैं। 'राम' से उपक्रम और राम से ही उपसंहार हैं इसलिये वर्तुल आकार कहा। काम, दुर्गादि देवताओं की उपमा दी है वे सोपाधिहित हैं, रामजी निरुपाधिहित हैं अतः उनकी स्तुति भी ऐसी ही है।

२६--पूर्वाभाद्रपद – इसमें २ तारे हैं आकार मञ्च सा है। यह रुद्राष्टक है फल है सेवक मन मानस मराल से' इस स्तुति में (१) निर्गुण और (२) गुणागार येही दोनों तारे चमकते हैं। यहाँ भी शरण जाते हैं, कहीं स्थिररूप से बसाते नहीं, अतः मंचाकार कहा। 'न तोहं सदा सर्वदा' शम्भु तुभ्यं कह कर 'मानस मराल' कहा।

२७--उत्तराभाद्रपद—इसमें २ तारे हैं आकार यमल सा है। यह भुशुण्डिकृत स्तुति है फल है 'पावन गंग तरंग माल से' इसमें (१) करिय राम पद पंकज नेहा' (२) हरि नरा भजंति ये। येही दो तारे चमकते हैं। 'इसके बिना यह नहीं यही बात स्तुति भर में चली गई है। इससे यमलाकार कहा। संतरण कहने से 'गङ्ग तरंग माल' कहा।

२८--रेवती—इसमें ३२ तारे हैं आकार मर्दल सा हैं। यह ग्रन्थकारकृत स्तुति है। फल है—

कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाखंण्ड।
दहन राम गुनग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड॥

इस स्तुति में रघुवंश भूषन कह कर ३२ तारों की चमक कहा। भूषण बत्तीस माने गये हैं।

'मति मन्द तुलसीदासहू पायेउ परम विश्राम'
यह ग्रन्थकार का ढिढौंरा है अतः मर्दलाकार कहा।

गनिका अजामिल गीधादि का सन्तरण कहने से कुपथ कुतर्कादि का नाश कहा।

चन्द्र—राम नाम चन्द्र है और यह ऐसा चन्द्र है कि सांसारिक कृसानु भानु और हिमकर का कारण है। राम नाम में रकार अग्नि बीज है अकार भानु बीज है और मकार चन्द्र बीज है। तीनों मिल कर 'राम' हुआ एवम् राम नाम में सारा संसार बीज रूपेण निहित्त है, यथा—

बन्दौ नाम राम रघुबर को।
हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥

अथवा राम शब्द में चार अक्षर (र×अ×अ×म) है। रकार विराट् का वाचक है प्रथम अकार हिरण्य गर्भ का वाचक है। द्वितीय अकार ईश्वर का वाचक है और मकार ब्रह्म का वाचक है, एवम् चतुष्पाद ब्रह्म का वाचक राम शब्द प्रणव रूप है।

जब ब्रह्म का रामावतार हुआ, तो ब्रह्मयश वेद का रामायण रूप में अवतार हुआ, और ब्रह्म के नाम प्रणव का रामनाम रूप में अवतार हुआ लोगों का काम न निर्गुण ब्रह्म से चलता है न सगुण ब्रह्म से चलता है क्योंकि दोनों रूप अकथ अगाध अनादि और अनूप हैं अतः पकड़ से बाहर हैं पर नाम पकड़ के भीतर है और उसके द्वारा दोनों रूप पकड़ में आ जाते हैं अतः दोनों रूपों से नाम को बड़ा कहा यथा—

मोरें मत बड़ नामु दूहूँते।
किये जेहि जुग निज बस निज बूते ॥

महादेव जी काशी में मुक्ति के लिये इसी नाम का उपदेश करते हैं। ग्रन्थकार ने बालकाण्ड के १८ दोहा से लेकर २७ वें दोहा तक ६ दोहों में नाम का ही निरूपण किया है, जिसमें एक से एक रहस्य भरे पड़े हैं।

गुनगाना—श्रीरामचरित मानस में राम गुण गान है, तथा सुकृती साधु और नाम का गुणगान है राम गुणगान रूपी जल से तो रामचरितमानस भरा पड़ा है पर सुकृती गुणागान, साधु गुणगान और नाम गुणगान की भी मात्रा अल्प नहीं है।

ते विचित्र—यहाँ विचित्र शब्द देहली दीपक न्याय से ते के साथ भी अन्वित होगा, और जल विहँग के साथ भी अन्वित होगा। सुकृती साधु और नाम के गुनगान विचित्र हैं क्योंकि इनका विषय विचित्र हैं। कहीं नरनारी का गुणगान हैं तो कहीं बेलि बिटप का गुणगान है कहीं देवता का गुणगान है तो कहीं राक्षस का भी गुणगान है कहीं मुनियों का गुणगान है तो कहीं कोल किरात का गुणगान है कहीं बिहग मृग का गुणगान है तो कहीं बन्दर भालु का गुणगान है। इसी भाँति कहीं राम रघुबीर हरि दीन दयालादिनामों का गुण गान है तो कहीं गई बहोरि गरीब नेवाज साहिब आदि नामों का गुणगान है।

जल बिहगसमाना–जल बिहग तो विचित्र होते ही हैं, जल कुक्कुट, कल हंस, चक्रवाकादि सब के रूप विचित्र होते हैं, तथा बोली भी विचित्र होती है। इनका जल का साथ है, जहाँ जल होता है, वहीं ये रहते हैं, ये जल से बहुत दूर नहीं जाते। इसी भांति सुकृती साधु नाम गुणगान का राम यश का साथ है, ये गान रामयश से दूर नहीं जाते, रामयश ही इनका निवास स्थल है।

सन्त सभा—सहभान्ति अभीष्टनिश्चयार्थमेकत्र यत्र। अभीष्ट के निश्चय के लिये जहाँ लोग इकट्ठे शोभित हों यथा—

बैठे सुर सब करहिं बिचारा।
कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा॥

महाभारत में कहा है, कि वह सभा नहीं है, जिसमें वृद्ध न हों, और वे वृद्ध नहीं हैं, जो धर्म न कहें और वह धर्म नहीं है, जहाँ सचाई नहीं, और वह सचाई नहीं, जिसमें छल हो। अतः सभा में प्रवेश के लिये धर्म शास्त्रों में बड़े कठिन नियम हैं। स्पष्ट लिखा है, कि सभा में न जाना चाहिये, और जाय तो साफ बात कह दे, क्योंकि विरुद्ध कहने वाले और चुप रहने वाले दोनों पापी हो जाते हैं। जिस सभा में धर्म अधर्म से मारा पड़ता है, वहाँ के सभासदों को ही मरा समझना चाहिये, यथा—

रामु सत्य संकल्प प्रभु सभा काल बस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जानि खोरि॥

सभा में इतना बड़ा अन्याय विभीषणजी के साथ हुआ, और सभासद सब चुप रह गये, कोई न बोला अतः विभीषणजी कहते हैं, 'सभा काल बस तोरि'।

फिर सन्त सभा की महिमा का कहना ही क्या है? वह तो एक महान् तीर्थ है, यथा—

मुदमङ्गल मय सन्त समाजू।
जो जग जंगम तीरथ राजू॥
राम भगति जहँ सुरसरि धारा।
सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥
बिधि निषेध मय कलिमल हरनी।
करम कथा रवि नंदिनि बरनी॥
हरिहर कथा बिराजति बेनी।
सुनत सकल मुदमंगल देनी॥
बट बिश्वास अचल निज धरमा।
तीरथ राज समाज सुकरमा॥

सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा।
सेवत सादर समन कलेसा॥
अकथ अलौकिक तीरथ राऊ।
देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग॥

संत सभा की सेवा का इतना बड़ा आदर था, कि जिससे कोई चूक हो जाती थी, उसे कहा जाता था, कि इसने साधु सभा की सेवा नहीं की है, यथा—

दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई।
जेहि गुरु साधु सभा नहिं सेई॥

चहुँ दिसि अँवराई—यहां तीन सम्बन्ध से वस्तुओं का वर्णन मानसप्रसङ्ग में है—(१) तद्गत (२) तल्लीन और (३) तदाश्रय। सो पुरइन आदि तो तद्गत हैं, मीनादि तल्लीन है, और वृक्षादि तदाश्रय हैं। भाव यह कि चारो तरफ जो आम का बगीचा है। वह भी मानस के आश्रय है, मानस के जल से ही पुष्ट है। ऐसे बगीचे मानस के चारो तट पूरब पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में हैं, इसी लिये 'चहुँदिसि अँवराई' कहा। इसी भांति संत सभाएँ भी रामचरित मानस के आश्रय चारों घाटों के तटों पर हैं। वृक्षों की स्थिति पराये हित के लिये है, अपने लिये नहीं। वृक्ष के मूल से, तने से, डाल से, पत्ते से, फूल से लता से रात दिन काम लिया करते हैं। उसकी छाया में बैठते हैं, उसके फूल की गंध लेते हैं, फल खाते हैं उसके पत्ते और डालियाँ तोड़ कर, उसके तने को काट कर काम में लाते हैं, अतः कहा है कि—

संत बिटप सरिता गिरि धरनी।
परहित हेतु सबन्ह कै करनी॥

इसी से संतों की उपमा वृक्षों से दी गई। इनमें भी आम अत्यन्त सुस्वादु होता है, इसी लिये रसाल कहलाता है, इनमें से जिन संतों

का हृदय राम सनेह से सरस है, वे ही श्रीराम चरितमानस के आश्रित हैं, उन्हीं की सभा को यहाँ अँवराई कहा है, यथा—

विषयी साधक सिद्ध सयाने।
त्रिविध जीव जग वेद बखाने॥
राम सनेह सरस मन जासू।
साधु सभा बड़ आदर तासू॥

(१) यह साधु सभा कोई तो दीन घाट के तट पर अर्थात् पूर्व की ओर है, यथा—

धेनु रूप धरि हृदय बिचारी।
गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी॥
निज सन्ताप सुनाएसि रोई।
काहू तें कछु काज न होई॥

छं०—
सुर मुनि गंधर्वा मिलि करि सर्वा गे बिरंचि के लोक,
सँग गो तनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोक।
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई,
जाकरि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई।

दोहा—
धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरि पद सुमिरु।
जानत जनकी पीर प्रभु भंजिहिं दारुन बिपति॥
बैठे सुर सब करहिं बिचारा।
कहँ पाइअ प्रभु करिय पुकारा॥

(२) कोई साधु सभा ज्ञानघाट के तट पर, अर्थात् पश्चिम ओर है, यथा—

लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु।
ज्ञान सभा जनु तनु धरे भगति सच्चिदानंदु॥

(३) कोई साधु सभा उपासना घाट के तट पर अर्थात् उत्तर ओर है, यथा—

मुनि समूह महं बैठे सनमुख सबकी ओर।
सरद इन्दु तन चितवत मानहुँ निकर चकोर॥

(४) कोई सभा कर्मघाट के तट पर अर्थात् दक्षिण ओर है, यथा—

तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा।
जाहिं जे मज्जहिं तीरथ राजा॥
ब्रह्म निरूपन धर्म विधि बरनहिं तत्व विभाग।
कहहिं भगति भगवन्त कै संजुत ज्ञान विराग॥

श्रद्धा—गुरु और वेद वाक्य पर विश्वास करने को श्रद्धा कहते हैं, अथवा आस्तिक्य बुद्धि को श्रद्धा कहते हैं। इस श्रद्धा और विश्वास बिना सिद्ध लोग अपने हृदयस्थ ईश्वर को नहीं देख सकते, यथा—

भवानी शङ्करौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्॥

श्रद्धा ही माँ की भांति योगियों की रक्षा करती है। इसके बिना कर्म उपासना ज्ञान कोई भी सम्भव नहीं है।

कर्म—श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई।
बिनु महि गन्ध कि पावै कोई॥
उपासना—श्रद्धा क्षमा मयत्री दाया।
मुदिता ममपद प्रीति अमाया॥
ज्ञान—सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई।
जौ हरि कृपा हृदय बस आई॥ इत्यादि।

श्रद्धा बिना तीर्थ फल भी नहीं होता, यथा—

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी।

यहाँ श्रद्धा से सात्विकी श्रद्धा अभिप्रेत है।

रितुबसन्त—यह ऋतुओं का राजा है, इसलिये ऋतुराज कहलाता है। इसमें बहुत से फूल फूलते हैं इसलिए इसे कुसुमाकर कहते हैं। इस ऋतु में प्रकृति मधुमयी हो जाती है, चारों ओर अनुराग उमड़ा पड़ता है। बन बाग का कायापलट हो जाता है, नये पत्ते निकल आते हैं। इसी ऋतु में आम बौर से लद जाते हैं, उसमें सरसोईं भी बैठ जाती है।

इस बगीचे में सदा बसन्त ऋतु बना रहता है, यथा—

भूप बाग बर देखेउ जाई।
जहँ बसन्त रितु रही लोभाई॥
लागे बिटप मनोहर नाना।
बरन बरन बरबेलि बिताना॥
नव पल्लव फल सुमन सुहाए।
निज सम्पति सुर रूख लजाए॥
चातक कोकिल कीर चकोरा।
कूजत बिहंग नटत कल मोरा॥

समगाई—जिस भांति इस अँवराई में सदा बसन्त ऋतु रहता है। उसी भाँति सन्त सभा में निरन्तर श्रद्धा बनी रहती है और इसी कारण यह बगीचा सदा हरा भरा पुष्प और फूलों से लदा हुआ रहता है। ऊपर कह आये हैं, 'सुकृती साधु नाम गुनगाना' और यहाँ श्रद्धा रितु बसन्त समगाई, कहा। भावार्थ यह कि जिस भांति सुकृती साधु तथा नाम गुनगान अनेक स्थलों में है, उसी भाँति बसन्त का भी गुणगान अनेक स्थलों में है, अथवा जिस भाँति बसन्त आने पर बन बाग की शोभा का गान होता है। उसी भाँति श्रद्धा के उदय से साधु सभा की शोभा का गान अभिप्रेत है।

भगति निरूपन बिबिध बिधाना।
छमा दया दम लता बिताना॥
सम जम नियम फूल फल ज्ञाना।
हरि पद रसबर बेद बखाना॥ ७॥

अर्थ—अनेक प्रकार से भक्ति का निरूपण, क्षमा, दया और दम ये लता मण्डप हैं। मनोनिग्रह, यम और नियम ये फूल हैं, ज्ञान फल है और भगवत् चरण ही श्रेष्ठ रस है, ऐसा वेदों ने कहा है।

भगति निरूपण—भज सेवायाम् धातु से क्तिन् प्रत्यय करने से भक्ति शब्द सिद्ध होता है। इसका अर्थ 'सेवा' है आत्मकल्याणेच्छु के लिये भक्ति का विधान है, यथा—

भजि रघुपति करुहित आपना।
छाँडहु नाथ मृषा जलपना॥
मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू।
महा मोह निसि सूतत जागू॥
नील कंज तनु सुन्दर स्यामा।
हृदय राखु लोचनाभिरामा॥

यह भक्ति दो प्रकार की होती है— १) अभेद भक्ति और दूसरी भेद भक्ति। अभेद भक्ति को ही ज्ञान कहते हैं, यथा—

सोहमस्मि इति बृत्ति अखण्डा।
दीप सिखा सोइ परम प्रचण्डा॥
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा।
बारि बीचि इव गावहिं बेदा॥ इत्यादि

ऐसे भजन करने वाले को परम सिद्धि होती है, कि वह भगवत् स्वरूप में लय हो जाता है। यही निर्वाण मुक्ति है।

भेद भक्ति में सेवक सेव्य भाव मूल है। ऐसी भक्ति वाले आई हुई मुक्ति को भी ग्रहण नहीं करते उनका साधन और सिद्धि दोनों ही भगवत् चरणानुराग है, यथा—

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं।
तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥
तातें मुनि हरि लीन न भयऊ।
प्रथमहिं भेद भगति वर लयऊ॥

कारण यह है कि अभेद भक्ति वाले ज्ञानी अभिमान को एक दम मिटा कर, अपनी पृथक् स्थिति ही मिटा देते हैं, अतः मुक्त हो जाते हैं, पर भेद भक्ति वाले सब प्रकार के अभिमान को मिटाने पर भी, सेवक सेव्य भाव वाला अभिमान बलपूर्वक बनाये रहते हैं, यथा—

अस अभिमान जाय जनिभोरें।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

सब प्रकार के अभिमान मिटने से मुक्ति उनके करतल है, पर सेवक सेव्य भाव में जो आनन्द उन्हें मिलता है, उसे मुक्ति के लिये भी ये छोड़ना नहीं चाहते 'मुक्ति निरादर भक्ति लुभाने' हैं, अतः ये मुक्ति नहीं चाहते। ऐसे ही महानुभावों को अविरल भक्ति मिलती है। इसी अविरल भक्ति को, अनपायनी भक्ति, प्रेमा भक्ति आदि नामो से अभिहित करते हैं इसीलिये कहा है कि—

भगतिहिं ज्ञानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहि भव सम्भव खेदा॥

नाम मात्र का भेद, ज्ञान और भक्ति में हैं, फिर भी सुभीते पर ध्यान देने से बहुत बड़ा अन्तर प्रतीत होता है। ज्ञानी अपने पुरुषार्थ से काम लेता है, और भक्त सर्वात्मना अपने को भगवत् चरणों में समर्पण कर देता है, भक्त की जिम्मेदारी पूरी भगवान पर आ जाती है, अतः ज्ञानियों को बड़े विकट प्रत्यूहों का सामना करना पड़ता है, और भक्त को ये विघ्न भगवत्प्रसाद से बाधा नहीं करते, उन्हें साधन काल में भी आनन्द ही आनन्द है, यथा—

मोरें प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी।
बालक सुत समदास अमानी॥
जनहिं मोर बल निज बलताही।
दुहुँ कहँ कामक्रोध रिपुआही॥
प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता।
प्रीत करै नहिं पाछिल बाता॥

गह सिसु बच्छ अनल अहिधाई।
तहँ राखै जननी अरगाई॥
जिमि सिसुतन व्रन होइ गोसाईं।
मातु चिराव कठिन की नाईं॥

जदपि प्रथम दुख पावै रोवै बाल अधीर।
व्याधि नास हित जननी गनत न सो सिसु पीर॥
तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हितलागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहिं कस न भजहु भ्रम त्यागि॥
यह बिचारि पंडित मोहिं भजहीं।
पाएहु ज्ञान भगति नहिं तजहीं॥

विविध विधाना—प्रयोजन तथा अधिकारी भेद से भक्ति के अनेक विधान हैं—विषाद नाश के लिये भक्ति विधान भगवत् कृपा सम्पादन के लिये भक्ति योग जन्म फल प्राप्ति के लिये भक्तिमार्ग सर्व-साधारण के लिये नवधा भक्ति ज्ञानी जिज्ञासु अर्थार्थी तथा आर्त के लिये गौणी भक्ति इत्यादि। विषाद नाश के लिये भक्ति यथा—

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत कर्म भोग सबु भ्राता॥
जोग बियोग भोग भल मन्दा।
हित अनहित मध्यम भ्रम फन्दा॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू।
सम्पति बिपति करम अरु कालू॥
धरनि धामु धनु पुर परिवारु।
सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारु॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मनमाहीं।
मोहमूल परमारथु नाहीं॥

दो०—सपने होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंचु जिय जोई॥

अस बिचारि नहिं कीजिअ रोषू।
काहुहिं बादि न देइअ दोसू॥
मोह निसा सबु सोवनि हारा।
देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी।
परमारथी प्रपंच बियोगी॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा।
जब सब बिषय बिलास बिरागा॥

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा।
तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥
सखा परम परमारथु एहू।
मन क्रम बचन राम पद नेहू॥

रामु ब्रह्म परमारथ रूपा।
अबिगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल बिकार रहित गत भेदा।
कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुरहित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहि जगजाल॥

सखा समुझि अस परिहरि मोहू।
सिय रघुबीर चरन रत होहू॥
(राम गीता)

भक्ति योग—भगवत् कृपा सम्पादन के लिये—

जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई।
सो मम भगति भगत सुखदाई॥
सो सुतन्त्र अवलंब न आना।
तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना॥

भगति तात अनुपम सुख मूला।
मिलइ जो संत होइ अनुकूला॥
भगति के साधन कहौं बखानी।
सुगम पन्थ मोहिं पावहिं प्रानी॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती।
निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥
येहि कर फल मन बिषय बिरागा।
तब मम धर्म उपज अनुरागा॥
श्रवनादिक नव भगति दृढ़ाहीं।
मम लीला रति अति मनमाहीं।
संत चरन पंकज अति प्रेमा॥
मनक्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा।
सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा॥
मम गुन गावत पुलक शरीरा।
गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दम्भ न जाके।
तात निरन्तर बस मैं ताके॥

दोहा—बचन करम मन मोर गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करौं सदा बिश्राम॥

भगति जोग सुनि अति सुख पावा।
लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा॥
जौं परलोक इहाँ सुख चहहू।
सुनि मम बचन हृदय दृढ़ गहहू॥
सुलभ सुखद मारग येह भाई।
भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥
ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका।
साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥

करत कष्ट बहु पावै कोऊ।
भगतिहीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥
भगति सुतंत्र सकल सुख खानी।
बिनु सतसङ्ग न पावहिं प्रानी॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न सन्ता।
सत सङ्गति संसृति कर अंता॥
पुन्य एक जग महु नहिं दूजा॥
मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा।
जो तजि कपटु करै द्विज सेवा॥

औरौ एक गुपुत मत सबहिं कहौं कर जोरि।
सङ्कर भजन बिना नर भगति न पावै मोरि॥

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा।
जोग न मख जप तप उपवासा॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई।
जथा लाभ सन्तोष सदाई॥
मोर दास कहाइ नर आसा।
करै तो कहहु कहा बिस्वासा॥
बहुत कहौं का कथा बढ़ाई।
एहि आचरन बस्य मैं भाई॥
बैर न बिग्रह आस न त्रासा।
सुखमय ताहि सदा सब आसा।
अनारम्भ अनिकेत अमानी।
अनघ अरोष दच्छ बिज्ञानी॥

मम गुनग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह।
ताकर सुख सोइ जानै परानन्द सन्दोह॥

नवधा भक्ति—

प्रथम भगति सन्तन्ह कर सङ्गा।
दूसरि रति मम कथा प्रसङ्गा॥

गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुनगन करइ कपट तजि गान॥

मन्त्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।
पंचम भजनु सो वेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु कर्मा।
निरत निरन्तर सज्जन धर्मा॥
सातवँ सम मोहिमय जग देखा।
मोतें सन्त अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथा लाभ सन्तोषा।
सपनेहु नहि देखइ परदोषा॥
नवम सरल सब सन छल हीना।
मम भरोस हिय हरष न दीना॥
नव महुँ एकौ जिन्ह के होई।
नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनी मोरें।
सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥

ज्ञानी के लिये भक्ति विधान यथा—

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी।
बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा।
अकथ अनामय नाम न रूपा॥

जिज्ञासु के लिये भक्ति विधान यथा—

जानी चहहि गूढ़ गति जेऊ।
नामजीह जपि जानहि तेऊ॥

अर्थार्थी के लिये भक्ति विधान, यथा —

साधक नाम जपहिं लै लाएँ।
होहिं सिद्ध अनिमादिक पाए ॥

आर्त के लिये भक्ति विधान यथा—

जपहि नाम जन आरत भारी।
मिटहिं कुसङ्कट होहिं सुखारी ॥

क्षमा—द्वन्द्व सहिष्णुता अथवा परापराध सहिष्णुता को क्षमा कहते हैं यथा—

अनुचित बचन कहेउँ अज्ञाता।
क्षमहु क्षमा मंदिर दोउ भ्राता ॥ अथवा—
बुन्द अघात सहहिं गिरि कैसे।
खल के बचन संत सह जैसे ॥
जो कोउ कोप भरे मुख बैना।
सनमुख हतै गिरा सर पैना ॥
तुलसी तऊ लेस रिसि नाहीं।
सो सीतल कहिये जग माहीं ॥

तेज होत तन तरनि को अचरज मानत लोइ।
तुलसी जो पानी भया बहुरि न पावक होइ ॥
(वै० सं०)

दया—दुखी को देखकर चित्त के द्रवीभूत होने को दया कहते हैं, यथा—

बहु प्रकार मारन कपि लागे।
दीन पुकारत तदपि न त्यागे ॥
जो हमार हर नासाकाना।
तेहि कोसलाधीस कै आना ॥
सुनि लछिमन सब निकट बोलाये।
दया लागि हंसि तुरत छोड़ाये ॥ अथवा—

नारद देखा बिकल जयंता ।
लागि दया कोमल चित संता ॥

यह परम धर्म है, यथा—

धर्म कि दया सरिस हरि जाना ।

दम—वाह्येन्द्रिय निग्रह को दम कहते हैं । इसके अठारह दोष हैं । इनके रहते दम नहीं होता ।

(१) अनृत, यथा—

झूठइ लेना झूठइ देना झूठइ भोजन झूठ चबेना ।

(२) पैशुन, यथा—

अघ कि पिशुनतासम कछु आना ।

(३) तृष्णा, यथा—

तृस्ना उदर बृद्धि अतिभारी ।

(४) प्रातिकूल्य, यथा—

हठि सबहीके पंथहिं लागा ।

(५) तम (अज्ञान), यथा —

मोह मूल बहु सूल प्रद, त्यागहु तम अभिमान ।

(६) अरति (यथा लाभ से असन्तुष्टि) यथा—

जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ।

(७) रति, यथा—

हे बिधि मिलै कवन बिधि बाला ।

(८) अभिमान, यथा—

गुरु आएउ अभिमान तें, उठि नहीं कीन्ह प्रनाम ।

(९) विवाद, यथा—

उत्तर प्रति उत्तर मैं कीन्हा ।

(१०) परिवाद, यथा—

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना ।
नारि सिखावन करेसि न काना ॥

(११) अतिवाद, यथा—

जनि जलपना करि सुजसु नासहि,
नीति सुनहि करहि छमा ॥

(१२) परिताप, यथा—

आए अवध भरे परितापा।

(१३) (अक्षमा,) यथा—

गुरु अपमानता सहि नहि सकेउ महेस।

(१४) अधृति, यथा—

पुनि पुनि मुनि उसकहिं अकुलाहीं

(१५) असिद्धि (धर्म और वैराग्य की)

जे ताकहिं पर धन पर दारा।

(१६) पाप कृत्य—

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला।
सो सब करहिं वेद प्रतिकूला॥

(१७) लोक द्वेष, यथा—

जौं नर होइ चराचर द्रोही।

(१८) हिंसा, यथा—

हिंसा पर अति प्रीति तिन्हके पापहिं कवनि मिति।

लता बिताना—'बिताना' बहुवचन का रूप है, एक वचन का प्रयोग होता तो यहाँ 'बितान' पाठ दिया जाता। तात्पर्य्य यह कि बहुत से लता मण्डप बन गये हैं। वृक्षों पर जब लताएँ चढ़ती हैं, तो एक वृक्ष की लता फैलती हुई दूसरे निकट के वृक्ष पर जा रहती है, इसी भांति दूसरे वृक्षों की लताएँ फैलती हुई उस पर आ जाती हैं, एवम् लता मण्डप बन जाते हैं, सो इस अमराई में भी अनेक लता मंडप बन गये हैं इससे अमराई की शोभा तथा उपादेयता अति अधिक हो गई है।

यहाँ सन्त सभा ही अमराई है। गुण गुणी के ही आश्रय से रहते हैं, सो भक्ति के विविध विधान, क्षमा, दया, और दम, जो लता

स्थानीय माने गए हैं, इन्हीं सन्त विटप के आश्रय में हैं, अर्थात् ये गुण सन्तों में उसी प्रकार लिपटे हुए हैं, जिस भांति लताएँ वृक्षों में लिपटी रहती हैं, सन्त समाज में बराबर गुणों का आदान प्रदान हुआ करता है, अतः वहाँ ये गुण छाये हुए रहते हैं।

सम जम नियम फूल—मनोनिग्रह को शम कहते हैं, यही शांति है। यह अति अंतरङ्ग साधन है, वैराग्य संदीपिनी के अंतिम चार दोहों में श्रीगोस्वामीजी ने केवल शांति का वर्णन किया है. वे सब यहाँ उल्लेखनीय थे, पर विस्तार भय से प्रादेश मात्र ही दिखलाया जाता है, यथा—

रैनि को भूषन इंदु है दिवस को भूषन भानु।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञान॥
ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन शांतिपद तुलसी अमल अदाग॥
सात दीप नव खंड लौं, तीन लोक जग माहि।
तुलसी सांति समान सुख अपर दूसरो नाहि॥

जहाँ सांति सत गुरु की दई।
तहाँ क्रोध की जरि जरि गई॥
सकल काम वासना बिलानी।
तुलसी यही सांति सहदानी॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांच यम हैं, और शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पांच नियम हैं. इनका वर्णन योग प्रकरण में ऊपर आ चुका है, जब बसंत ऋतु आती है, तो आम में बौर लगता है, बौर ही आम का फूल है, तो उसके सुगंध से गाँव का गाँव सुगन्धित हो उठता है। इसी भांति श्रद्धातिशय से संतों में आप से आप, शम, यम और नियमों का उदय होता है, और उससे वायु मण्डल प्रभावित हो जाता है। सदा बसन्त ऋतु रहने के कारण, संत विटप में सदा ही शमादि पुष्प बने ही रहते हैं, यथा—

पल्लवत फूलत नवल नित (संसार विटप नमामहे)
नित्य नये पत्ते, फूल और फल से संत विटप युक्त रहता है।

फल ज्ञाना—जहाँ फूल आये, तहाँ फल लगता ही है। पुष्पितावस्था में ही उसमें फल सूक्ष्म रूप से रहता है, जिसे सरसोईं कहते हैं, वही बढ़कर पहिले टिकोरा होता है, और पीछे से पूरा आम हो जाता है। इस बौर का फल ज्ञान है। बिना फूल के फल लगता नहीं, इसी भांति बिना शम, यम, और नियमों के ज्ञान नहीं होता। इस ज्ञान में परोक्ष अपरोक्ष दोनों का ग्रहण है।

पहिले आम (टिकोरा) कच्चा रहता है, उस समय उसमें रस भी कम होता है, और खट्टा होता है, इसी भांति अपरिपक्व ज्ञान भी नीरस और उद्वेजक होता है, समय पाकर जब परिपक्व होता है, तब उसमें रस बाहुल्य और माधुर्य्य आता है।

हरिपद रस वर—अखिल रसामृत मूर्ति भगवान् के चरणारविन्द ही रस रूप हैं, यथा—
रसोवैसः। वह ब्रह्म रस रूप है। इसीलिये कहा है, कि—

भक्ति भक्त भगवंत गुरु, चतुर नाम वपु एक। तथा—
सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सो हरिपद अनुभवत परम सुख अतिसय द्वैत वियोगी॥

वेद बखाना—

रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।
कोह्येवान्यात् कः प्राण्यात्।
यदेष आकाश आनन्दोन स्यात्।
एष ह्येवानन्दयाति।
सैषानन्दस्य मीमांसा भवति।
एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति॥
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन।
आनन्दो ब्रह्मेति व्यजनात्॥
विज्ञानमानन्दं ब्रह्म।

इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म को ही आनन्द अथवा रस कहा।

औरौ कथा अनेक प्रसंगा।
ते सुक पिक बहु बरन बिहंगा ॥ ८ ॥

अर्थ—दूसरी कथाओं के जो अनेक प्रसङ्ग आ गए हैं, वे ही तोते, कोयल तथा रङ्गविरङ्ग के पक्षी हैं।

औरौ कथा—अर्थात् श्रीराम कथा के व्यतिरिक्त अन्य कथाएँ भी जिनका उपर्युक्त अवसरों पर उल्लेख मात्र है, या जो उदाहरण के रूप में दी गई हैं। इन कथाओं की पूरी व्यवस्था जानने के लिये श्रीमद्भागवत, वाल्मीकीय रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों के देखने की आवश्यकता पड़ती है।

अनेक प्रसंगा—भाव यह कि ये प्रासङ्गिक कथायें हैं, ऐसा प्रसङ्ग आ गया, कि उनका उल्लेख करना पड़ा। यथा—

(१) बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा।
(२) अपत अजामिल गज गनिकाऊ ॥
(३) कश्यप अदिति महा तप कीन्हा।
(४) गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर ॥
(५) सुधि करि अम्बरीष दुरवासा।
(६) तापस अन्धसाप सुधि आई ॥
(७) कद्रूं विनतहिं दीन्ह दुखु तुम्हहिं कौसिलादेव।
(८) गनिका अजामिल व्याध गीध
गजादि खल तारे घना।
(९) होइहिं कीन्ह कबहुँ अभिमाना ॥
सो खोवै चह कृपा निधाना।
(१०) हठवस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस।
(११) जेहि प्रकार सुरसरि महि आई।
(१२) चित्रकेतु कर घर उन घाला ॥
(१३) कनक कशिपु कर पुनि असहाला।
(१४) ससि गुरु तियगामी नहुषु चढ़ेउ भूमिसुर जान।

(१५) तेहि सब आपनि कथा सुनाई।
मैं अब जाब जहाँ रघुराई॥

(१६) सुनि ताड़का क्रोध करि धाई।

(१७) सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू।
केहि न राजमद दीन कलंकू।

(१८) सिवि दधीच हरिचन्द नरेसा।

(१९) दंडक बन पुनीत प्रभु करहू।

(२०) दुंदुभि अस्थि ताल दिखराये।

(२१) ध्रुवं सगलानि जपेउ हरिनाऊं।

(२२) दच्छ सुतन्ह उपदेसिन्हि जाई।

(२३) बालमीकि नारद घट जोनी।
निज निज मुखनि कही निज होनी।

(२४) परसुराम पितु अज्ञा राखी।
मारी मातु लोग सब साखी।

(२५) तनय जजातिहि जौबनु दयेऊ।

(२६) भगत सिरोमनि भे प्रहलादू।

(२७) पुनि प्रनवौं पृथुराज समाना।

(२८) बलि बांधत प्रभु बाढ़ेउ।

(२९) लोक बेद ते बिमुख भा अधम न बेन समान।

(३०) रंति देव बलिभूप सुजाना।

(३१) कालनेमि जिमि रावन राहू।

(३२) श्रृङ्गी रिषिहिं बसिष्ठ बोलावा।

(३३) सहसबाहु भुज छेदनिहारा।
परसु बिलोकु महीप कुमारा।

(३४) सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत। इत्यादि।

ते सुक पिक बहु बरन बिहङ्गा—भाव यह कि, ये बाहर की चिड़ियाँ हैं; घूमते फिरते मानस में आ गई हैं, मानस में इनका निवास

नहीं हैं। इसी भाँति उपर्युक्त कथाओं में से बहुत सी ऐसी हैं जिनका सविस्तार वर्णं अन्य ग्रन्थों में मिलेगा, क्योंकि ये कथाएं उन्हीं ग्रंथों की हैं, श्रीरामचरितमानस में उनका उल्लेख मात्र आगया है। इसीलिये इन्हें 'सुक पिक बहु बरन विहंगा' कहा है।

दूसरा भाव यह है, कि बहुत सी कथाएं श्रीमद्भागवत की हैं, श्री मद्भागवत को शुकजी ने कहा है अतः उन कथाओं को शुक कहा कुछ कथाएं बाल्मीकीय रामायण की हैं, यथा--

गाधिसूनु सब कथा सुनाई।
जेहि प्रकार सुरसरि महि आई।
तेहि सब आपन कथा सुनाई।
मैं अब जाव जहाँ रघुराई।

बाल्मीकि जी कवि कोकिल हैं, यथा—

कुजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविता शाखां बन्दे बाल्मीकि कोकिलम्।

अतः इनकी कही कथा को कोकिल कहा, कुछ कथाएं महाभारतादि ग्रन्थों की हैं, उन्हें बहु वरण विहंगा' कहा

दो०—पुलक बाटिका बागबन, सुखसुबिहंग बिहारु।
माली सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारु ॥३७।

अर्थ—रोमाञ्च ही फुलवारी बाग और वन है जहाँ सुखरूपी अंच्छी चिड़ियाओं का विहार है, सुन्दर मनही माली है, जो सुन्दर नेत्रों द्वारा स्नेह जल से सींचता है।

पुलक वाटिका बागबन-भाव यह कि अमवारी का काम तो मानस सरोवर से ही चलता है, पर अमवारी के बाद फुलवारी, उपवन, और वन है, जिनको सोचने को आवश्यकता पड़ती है। यहाँ रोमाञ्च में ही तीन भेद माना है। जहाँ कहीं प्रेम से रोमाञ्च होता है, उसे

फुलवारी माना क्योंकि उसमें सिंचाई का काम बराबर जारी रहना चाहिये, जहाँ कहीं ज्ञान से रोमाञ्च होता है उसे उपवन माना, क्योंकि इसमें समय समय पर सिंचाई होती है और जहाँ कहीं कर्म से पुलक होता है, उसे बन माना क्योंकि यहाँ सिंचाई दैवाधीन है।

प्रेम से पुलक यथा —

पुलकित गात अत्रि उठि धाये।
देखि राम आतुर चलि आये॥
करत दंडवत मुनि उर लाये।
प्रेम बारि दोउ जन अन्हवाये॥

ज्ञान से पुलक, यथा—

जाना राम प्रभाव तब पुलक प्रफुल्लित गात।

कर्म से पुलक, यथा—

मुनि पुलके लखि सीलु सुभाऊ।

सुख सुबिहङ्ग बिहारु—सात्विक भाव होने से ही पुलक होता है, सात्विक भाव में सुख है। अतः सुख सुविहंग विहारु' कहा। भयादिकों में भी रोमाञ्च होता है, अतः उसके व्यावर्तन के लिये सुविहंग कहा, क्योंकि यहाँ सुमति का प्रसङ्ग चल रहा है। कुविहङ्ग कुमति के प्रसङ्ग में कहा गया है। यथा—

कुमत कुविहंग कुलह जनु खोली।

जहाँ जहाँ पुलक है, वहाँ आनन्द से पुलक है। यहाँ सुखरूपी सुविहङ्ग मानस सर के वासी हैं, ये बाहर से नहीं आये हैं, अतः यहीं विहार करते हैं।

माली सुमन—सुमन अर्थात् शुद्ध मन माली है, वही सिञ्चन करके वाटिका, बन, की रक्षा किया करता है। मन के ही द्रवीभूत होने से रोमाञ्च होता है, अतः पुलक की स्थिति मन पर ही निर्भर है।

सनेह जल सींचत लोचन चारु—पुलक रूपी वाटिका बाग के सिचन के लिये प्रेमाश्रु ही जल है, और नेत्रों द्वारा ही सिचन होता है, यथा—

ममगुन गावत पुलक सरीरा।
गदगद गिरा नयन बह नीरा॥

श्रीमानस प्रसङ्गस्य टीकां भावप्रकाशिकाम्।
रामार्पणं करोम्यद्य तेन मे प्रीयताम् प्रभुः॥

मानस प्रेमियो,

मणि ——— माला

मंगाइये ।

मणि—हिन्दी का एक मात्र श्री रामचरितमानस तथा तुलसी सम्बन्धी मासिक पत्र "मानस-मणि" वार्षिक मूल्य ३)

माला-धार्मिक (विशेष कर रामायण सम्बन्धी) पुस्तकों की मालायें

१—श्री मानस रत्नावली (ग्रन्थमाला)

२—श्री महेन्द्र पुस्तकमाला

३—श्री कौशलेन्द्र कथामाला

४—श्री रामदास भक्तमाला

प्रत्येक माला में अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अनेक प्रेस में हैं।

२) जमा करके स्थाई ग्राहक बनिये। जैसे जैसे पुस्तकें छपेंगी, आपके नाम भेजी जाँयगी।

मणि माला मंगाने का पता—

मंत्री

मानस संघ

पो० रामवन

वाया सतना।

हमारा अबतकका प्रकाशन

१—श्रीरामचरितमानसमें ब्रह्मचर्य जीवन |—) अप्राप्य
(श्री स्वामी स्वरूपानन्दजी)

२—श्रीरामचरितमानसमें श्रीहनुमानजी |—)
(श्रीजानकी राय 'जनक')

३—श्रीरामचरितमानसमें वीर रस |—)
(श्रीशारदाप्रसादजी)

४—श्रीरामचरितमानसमें शत्रुघ्न कुमार |)
(श्रीसुदर्शन सिंह जी)

५—नव निर्झरिणी [नवधा भक्ति पर ६ कहानियां] |—)
(श्री 'चक्र')

६—शबरी मंगल =)
(श्रीशम्भुप्रसादजी बहुगुना एम० ए०)

७—संगीत रामायण (द्वितीय संस्करण) =)
(श्रीस्वामी शिवानन्दजी सरस्वती)

८—मानस-प्रसङ्ग [पाँचवाँ भाग]
(मानस राजहंस श्री पं० विजयानन्दजी त्रिपाठी

९—ध्यान के समय ||≡)
(एफ० जे० अलेक्जेण्डर)

१०—अष्टदल (कहानियाँ) |=)
(श्री 'चक्र')

११—नूतन नवरत्न (कहानियाँ) |=)
(श्री 'चक्र')

मिलने का पताः—

मन्त्री—मानससंघ,

पो० रामवन, वाया सतना ।